कुरुक्षेत्र

फरवरी 1995

मूल्य : 3 रुपये

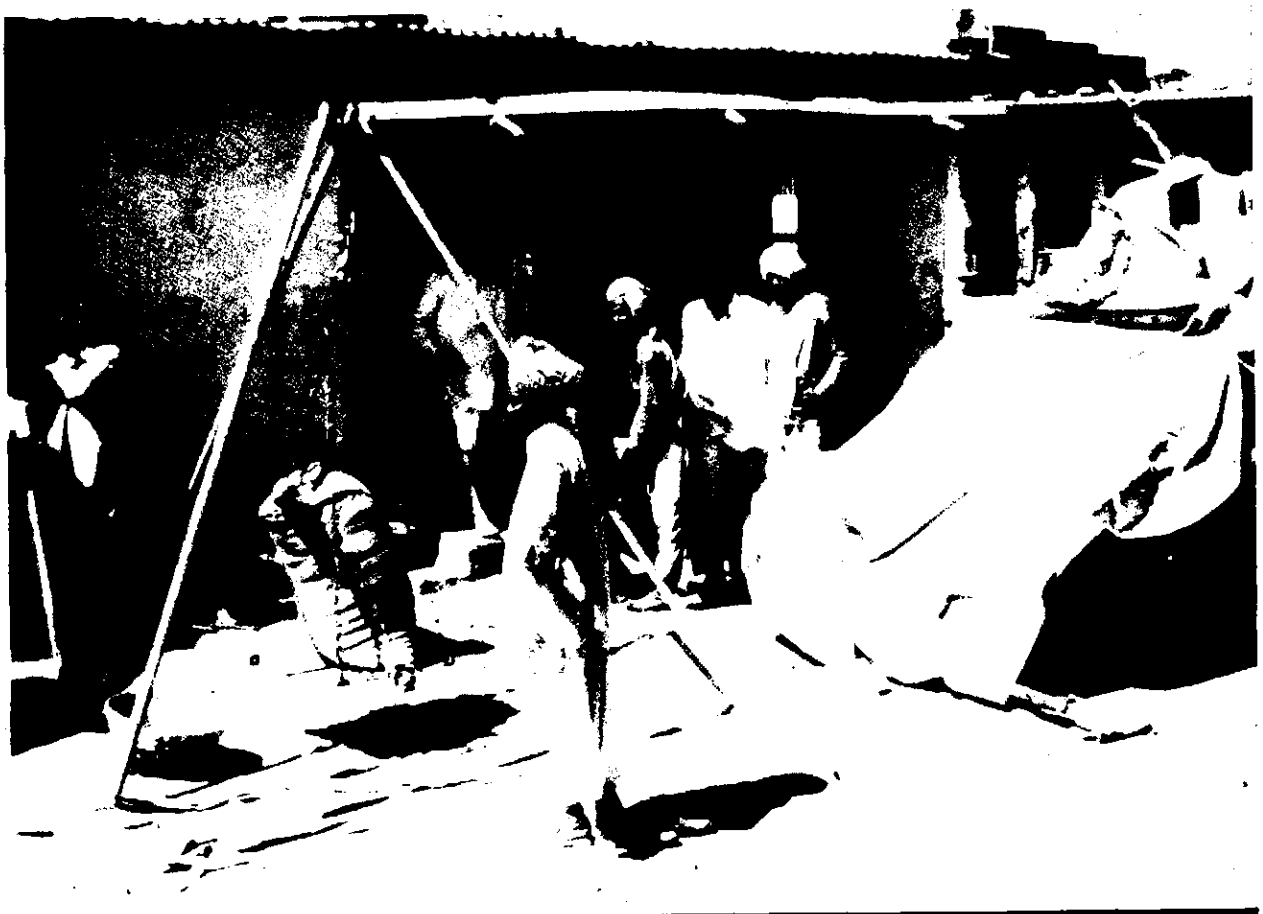

ग्रामीण मंडिया : समस्याएं और सम्भावनाएं

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत परिवार ऋण योजना

सन् 1980 से सरकार द्वारा शुरू किया गया समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) सरकार के उन महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में से है जो सरकार ने ग्रामीण विकास के क्षेत्र में गरीबी उन्मूलन की दिशा में चला रखे हैं।

इस कार्यक्रम का उद्देश्य गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों को ऐसे आय के साधन मुहैया कराना है जिनके माध्यम से वे अपना जीवन-स्तर गरीबी की रेखा से ऊपर ला सकें। इन साधनों को अनुदान और ऋण के माध्यम से उपलब्ध कराया जाता है। लेकिन फिर भी देखा गया है कि लाभान्वित परिवारों के जीवन-स्तर में महत्वपूर्ण सुधार इसलिये नहीं हो पाता क्योंकि इस कार्यक्रम के माध्यम से दिए गए अनुदानों से इतनी आय नहीं बढ़ पाती जिससे कि वे गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सकें। यद्यपि इस योजना के प्रत्येक वर्ष में यह कोशिश की जाती रही है कि परिवारों की आय में पर्याप्त वृद्धि हो लेकिन पाया गया है कि इस कार्यक्रम के अंतर्गत निवेश होने वाली राशि में और वृद्धि की जरूरत है।

परिवार ऋण योजना

परिवार ऋण योजना एक ऐसी योजना है जिससे कि इस कार्यक्रम के अंतर्गत लाभान्वित परिवारों में निवेश की राशि में वृद्धि होती है। इसका उद्देश्य परिवारों को अधिक धन उपलब्ध कराना है ताकि वे गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सकें। परिवारों की आय बढ़ाने के लिए इस कार्यक्रम के अंतर्गत परिवार के सभी सदस्यों की कार्य क्षमता और संभावनाओं का पता लगाकर योजना बनाई जाती है। ऐसी ऋण योजना बनाने के बाद बैंकों द्वारा ऋण प्रस्तावों पर विचार किया जाता है जिससे कि वे परिवार को साधन मुहैया कराने हेतु ऋण देने पर विचार कर सकें और साधनों के उपयोग से परिवार की आमदनी बढ़ा सकें। इस योजना के अंतर्गत किये जाने वाला निवेश लगभग 20,000 से 25,000 रुपये का होगा। एक बार इस योजना के अंतर्गत दिया जाने वाला ऋण प्रत्येक परिवार को दिया गया व्यक्तिगत ऋण माना जाएगा।

भारतीय रिजर्व बैंक ने हाल ही में ऐसे ऋणों को जमानत (सिक्योरिटी) की आवश्यकता से मुक्त कर दिया है जहां कृषि के उद्देश्य से 15,000 रुपये तक की राशि ऋण के रूप में प्रदान की जाती है और उससे सम्पत्ति खरीदी जाती है। पहले यह सीमा 10,000 रुपये तक थी। इसी प्रकार कृषि के क्षेत्र में ही बिना जमानत के ऋण की सीमा 2,000 रुपये से बढ़ाकर 5,000 कर दी गई है, जहां कोई अचल सम्पत्ति नहीं खरीदी जानी है। इन दोनों प्रावधानों से समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत परिवारों को ऋण प्राप्त करने में मदद मिलेगी।

गैर सरकारी संगठनों की भागीदारी

जब कभी संभव हो गैर सरकारी संगठनों को इस योजना में भागीदार बनाया जाता रहा है। ऐसे गैर सरकारी संगठनों का चयन ब्लाक लेवल की समन्वय समितियों और जिला स्तर की ऋण समितियों की बैठक में किया जाता है। केन्द्रीय स्तर पर ग्रामीण विकास मंत्रालय में संयुक्त सचिव की अध्यक्षता में एक कार्यकारी दल का गठन किया गया है जो इस योजना का मूल्यांकन करेगा, इसकी प्रगति की देख-रेख करेगा और इसके निष्पादन में होने वाली कठिनाइयों को दूर करने में मदद करेगा। इस कार्य दल में राज्य सरकार, नाबार्ड, भारतीय रिजर्व बैंक, अन्य बैंकों और कापार्ट के प्रतिनिधि शामिल हैं।

परिवार ऋण योजना पहले परीक्षण के तौर पर 40 जिलों में शुरू की गई थी लेकिन अब इसे पूरे देश में लागू कर दिया गया है।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

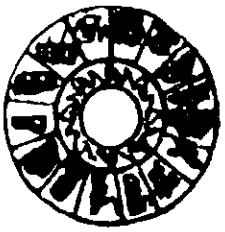

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 40 अंक 4 माघ-फाल्गुन 1916, फरवरी 1995

कार्यकारी संपादक	:	बलदेव सिंह मदान
उप संपादक	:	ललिता जोशी
उप निदेशक (उत्पादन)	:	एस.एम. चहल
विज्ञापन प्रबंधक	:	बैजनाथ राजभर
सहायक व्यापार व्यवस्थापक	:	पी० एन० बुलकुंडे
आवरण सज्जा	:	अलका

एक प्रति : तीन रुपये   वार्षिक चंदा : 30 रुपये

फोटो साभार : रमेश चंद्र, फोटो प्रभाग, ग्रामीण-विकास मंत्रालय

इस अंक में

ग्रामीण बाजारों का विकास	आर. एन. बंसल	3
कृषि विपणन आवश्यक क्यों?	सुन्दर लाल कुकरेजा	10
ग्रामीण युवा स्वरोजगार तलाशें	कुसुम गोयल	13
कृषि विपणन की समस्याएं	नवीन पंत	15
ग्रामीण विपणन का विकास	डा० गिरीश मिश्र	17
श्रम की भट्ठियों में झुलसता उन्मुक्त बचपन	डा० देवनारायण महतो	19
भारतीय अर्थ व्यवस्था के बढ़ते चरण	डा० सूरज सिंह	21
कर्मयोगी (कहानी)	डा० शीतांशु भारद्वाज	24
राजस्थान में कृषि विपणन	आर. के. मीना	27
जनसंख्या नियंत्रण में ग्रामीण सहकारी समितियों की भूमिका	प्रो० उमरावमल शाह	30
ग्रामीण विकास के आयाम और उपलब्धियां	डा० बद्री विशाल त्रिपाठी	34
महिलाओं का सर्वांगीण विकास	अमित कुमार सिंहल	39
पर्यावरण से जूझती पर्वतीय महिलाएं	डा० पुष्पेश पांडे	41
ग्रामीण रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण है : खादी ग्रामोद्योग	राजेश कुमार व्यास	42
ग्रामीण रोजगार में सहायक : सुनिश्चित रोजगार योजना	डा० अशोक कुमार सिंह	44
महिला राजगीर योजना : एक अभिनव प्रयोग	अशोक यादव	47

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 384888

पाठकों के विचार

मैं कुरुक्षेत्र का नियमित पाठक हूं। मुझे नवम्बर 1994 का अंक बहुत उपयोगी लगा क्योंकि इसमें स्वरोजगार और रोजगार के अवसरों के विषय में बहुत ही सार्थक तथा रोचक सामग्री प्रकाशित है। आज देश बेरोज़गारी के बढ़ते सैलाब के तूफानी दबदबे से जूझ रहा है। ऐसी स्थिति में युवा पीढ़ी को स्वरोजगार के लिए प्रेरित करना यथार्थ से जुड़ना है। इसमें 'मधुमक्खी पालन' पर विशिष्ट सामग्री दी गई है जिससे शिक्षित बेरोजगार प्रेरणा लेकर आत्म निर्भर बनने का प्रयास कर सकेंगे। इस अंक में प्रकाशित कहानी 'सज़ा' बहुत रोचक व प्रेरणादायक है जो पर्यावरण संरक्षण और विकास की चेतना को सहज भाव से मुखरित कर वन संरक्षण की भावना को जागृत करती है।

कुरुक्षेत्र का मुख पृष्ठ बहुत आकर्षक है। मधुमक्खी पालन पर विशेष सामग्री के स्तरीय चयन व साहित्यिक अभिरुचि के लिए संपादकीय परिवार बधाई स्वीकार करे। राजस्थान में जलोत्थान सिंचाई योजनाएं, वनों का महत्व, आहार व पोषण आदि विविध आयामों पर प्रकाशित लेख जानकारी में बढ़ोत्तरी करने में बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

कुरुक्षेत्र (नवम्बर 94) का सम्पूर्ण अंक मुद्रण त्रुटि से रहित, ज्ञानवर्द्धक, प्रेरक एवं संग्रहणीय अंक है। एक निवेदन करना चाहूंगा कि कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेख, कहानी, कविता आदि से संबंधित चित्र भी यदि समुचित स्थान पा सकें तो हम पाठकों के लिए सामग्री ज्यादा श्रेयस्कर रहेगी। 'कुरुक्षेत्र' मेरी सबसे पसंदीदा पत्रिका है।

धर्मवीर पाराशर,
प्लाट न० 285, स्कीम न० 8,
गांधी नगर, अलवर,
राजस्थान (पिन 301001)

"कुरुक्षेत्र" का नवम्बर, 94 का अंक प्राप्त हुआ। इस अंक में श्री रमेश चन्द्र पारीक द्वारा लिखित "सज़ा" कहानी अत्यन्त रोचक और ज्ञानवर्धक लगी। आज का स्वार्थी मनुष्य वनों के साथ खिलवाड़ कर "घर फूंक तमाशा देख" वाली कहावत को चरितार्थ कर रहा है।

संतुलित पर्यावरण समस्त जीवों के अस्तित्व का आधार है। किन्तु आज औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण और तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रयास में व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से पर्यावरण का अविवेकपूर्ण दोहन हो रहा है। इससे पर्यावरण लगातार असन्तुलित होता जा रहा है और भयंकर तथा आसाध्य रोगों का जन्म हो रहा है। साथ ही वन्य जन्तुओं का लोप होता जा रहा है। इसके अलावा भूस्खलन, भू-क्षरण, बाढ़, सूखा, रेगिस्तान के फैलाव और वनों के लगातार ह्रास में पर्यावरण का ह्रास स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। परिणामस्वरूप मनुष्य तथा जीव जन्तुओं का अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है। यदि यही स्थिति बनी रही और पर्यावरण संरक्षण के कारगर उपाय नहीं किए गए तो आने वाली पीढ़ियां हमें कोसेंगी।

बालेश्वर चतुर्वेदी,
862 बी/28 बी/71,
भारद्वाज पुरम, इलाहाबाद (उ० प्र०)
पिन – 211006

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में "पाठकों के विचार" स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक के न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, कमरा न० 467, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

–सम्पादक

ग्रामीण बाज़ारों का विकास

आर. एन. बंसल*

देश के अधिकांश छोटे और सीमांत किसानों के लिए अपनी उपज की बिक्री का पहला स्थान प्राथमिक ग्रामीण बाज़ार यानी हाट और मंडियां ही हैं। इन हाट और मंडियों की कार्यकुशलता का सीधा प्रभाव किसानों की आमदनी पर पड़ता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि किसानों की खुशहाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले ग्रामीण बाज़ारों पर विकास की प्रक्रिया का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। वे विकास प्रक्रिया से अछूते ही रहे हैं।

देशभर में करीब 26,800 प्राथमिक ग्रामीण बाज़ार हैं। इन्हें हाट और मंडी के नाम से भी जाना जाता है। अधिकतर हाट और मंडियां बहुत थोड़ी-सी जगह पर बनायी जाती हैं जहां किसी खास दिन, एक खास समय पर कुछ घंटों के लिए उत्पादकों और खरीदारों के बीच संपर्क होता है। इनके वर्तमान स्वरूप को देखते हुए इन्हें बाज़ार कहना उचित नहीं होगा क्योंकि बाज़ार शब्द का मतलब आम तौर पर ऐसा स्थान होता है जहां स्थायी दुकानें हों और जिनमें साल भर व्यापारिक गतिविधियां चलती रहती हों।

ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में इन बाज़ारों को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए क्योंकि ये हाट और मंडियां महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य भी कर रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के लिए ये डिपार्टमेंटल स्टोर या सुपर बाज़ार से कम नहीं हैं क्योंकि इनमें उनके दैनिक उपयोग की सभी चीजें उपलब्ध रहती हैं।

हाट बाज़ारों का महत्व

अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका में देश में कृषि उत्पादों की मंडियों की राज्यवार सूची दी गयी है। देश भर में कृषि उत्पादों की बिक्री के कुल 33,739 बाज़ारों में से 6,934 थोक मंडियां हैं जो साल के कुछ महीनों में काम करती हैं। शेष 26,805 ग्रामीण प्राथमिक बाज़ार यानी हाट और मंडियां हैं। अब तक सिर्फ 6,640 बाज़ार राज्य विपणन नियमन अधिनियम के दायरे में आते हैं जो कुल के 20 प्रतिशत से भी कम हैं।

देश में करीब 6,934 थोक बाज़ारों के साथ-साथ 26,805 ग्रामीण बाज़ार भी चल रहे हैं। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि विपणन प्रणाली में इनका महत्व बना हुआ है।

हाट-बाज़ारों के विकास के लिए सुविचारित कार्यक्रम

अपने उत्पादों की बिक्री करने वालों, विशेष रूप से छोटे और सीमान्त कृषकों का इस बात से सीधा संबंध है कि ग्रामीण बाज़ार कितनी कार्यकुशलता से अपना काम करते हैं। ये बाज़ार ग्रामीण किसानों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद उनकी अतिरिक्त उपज को बेचने में किसानों की मदद ही नहीं करते हैं, बल्कि उनकी रोजमर्रा की जरूरत की चीजें उपलब्ध कराने जैसी सेवाएं भी उन्हें प्रदान करते हैं। इसलिए अब तक विकास के लाभ से वंचित रहे छोटे किसानों के फायदे के लिए ग्रामीण बाज़ारों के विकास का कार्यक्रम बनाना अत्यंत आवश्यक है। दुर्भाग्य से अब तक इन बाज़ारों के विकास के लिए बहुत कम प्रयास किया गया है। वे अब भी बाज़ार संबंधी कानून के दायरे से बाहर हैं। उनमें व्यवस्थित विपणन के लिए न तो पर्याप्त बुनियादी सुविधाएं हैं और न छोटे किसानों को शोषण से बचाने की ही व्यवस्था है। जब तक इन बाज़ारों को विपणन संबंधी कानूनों के दायरे में नहीं लाया जाता, इनमें अपनी वस्तुएं बेचने वाले अधिकांश छोटे किसानों को उनकी मेहनत का उचित लाभ नहीं दिलाया जा सकेगा। हाट और मंडियों के विकास को ग्रामीण विकास का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाना चाहिए। देश के 27,000 से अधिक ग्रामीण प्राथमिक बाज़ारों को नियम-कानून के अंतर्गत लाने के लिए क्या नीति अपनायी जाए और ये बाज़ार कैसे ग्रामीण विकास के प्रमुख केन्द्र बनें, इस बारे में गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए।

इन्ही सब बातों को ध्यान में रखते हुए श्री शंकरलाल गुरु की अध्यक्षता में गठित कृषि विपणन प्रणाली संबंधी उच्च स्तरीय समिति (1992) ने ग्रामीण प्राथमिक बाज़ारों के योजनाबद्ध तरीके से विकास तथा विनियमन की ओर ध्यान देने की सिफारिश की। समिति ने आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में कम-से-कम 50 प्रतिशत ग्रामीण बाज़ारों यानी 15,000 बाज़ारों को संबंधित राज्यों के विपणन कानूनों के तहत लाने के लिए योजना बनाने की भी सिफारिश की। इसका अर्थ यह हुआ कि हर साल करीब

*भारत सरकार के कृषि विपणन सलाहकार

3,000 बाज़ारों को इस कानून के दायरे में लाया जाएगा।

ग्रामीण बाज़ारों के प्रकार

ग्रामीण बाज़ारों को मोटे तौर पर तीन वर्गों में बांटा जा सकता है :–

(1) नियतकालीन बाज़ार, यानी सामान्य बाज़ार
(2) मौसमी बाज़ार, यानी विशिष्ट वस्तुओं के बाज़ार
(3) दैनिक बाज़ार, यानी सामान्य बाज़ार

नियतकालीन बाज़ार आम बिक्री और खरीद-फरोख्त के वे बाज़ार हैं जिनमें ग्रामीण/जनजातीय लोग सप्ताह में एक या दो निश्चित दिनों को अपनी जरूरत की चीजें खरीदते हैं और अपने उत्पाद बेचते हैं। इनमें छोटे पैमाने पर वस्तुओं का व्यापार होता है।

मौसमी बाज़ार कोई खास चीज पैदा करने वाले इलाके के बीचोंबीच स्थित होता है। उदाहरण के लिए संतरा, केला, प्याज उगाने वाले क्षेत्रों में इस तरह के बाज़ार होते हैं और ये इन्हीं फसलों के खरीद-फरोख्त के केन्द्र होते हैं।

दैनिक बाज़ार वे बाज़ार हैं जिनमें व्यापारिक गतिविधियां हमेशा चलती रहती हैं। इनमें बिकने वाली वस्तुएं रोजमर्रा की जरूरत की चीजें होती हैं जिनकी मांग हमेशा रहती है। कई बार जिन इलाकों में जल्दी खराब होने वाली वस्तुएं पैदा होती हैं वहां भी इस प्रकार के बाज़ार होते हैं। इस प्रकार फसलों की किस्म पर भी बाज़ार का स्वरूप निर्भर रहता है।

ग्रामीण बाज़ारों की वर्तमान स्थिति

एशिया में ग्रामीण बाज़ारों के विकास की योजना बनाने के लिए बैंकाक में दिसम्बर, 1978 में आयोजित संयुक्त बैठक में की गई सिफारिशों के अनुसार देश के आठ-राज्यों के आठ जिलों में 585 ग्रामीण बाज़ारों का सर्वेक्षण किया गया। इसका उद्देश्य इन बाज़ारों की स्थिति का पता लगाना था। सर्वेक्षण से कई बातों का पता चला जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

प्रबंध : जहां तक ग्रामीण बाज़ारों के प्रबंध और उनकी देख-रेख का सवाल है इन राज्यों के चुने हुए बाज़ारों में कोई एकरूपता नहीं पाई गई। उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा जैसे कुछ राज्यों में बाज़ारों का स्वामित्व पंचायतों के हाथों में है। तमिलनाडु जैसे कुछ अन्य राज्यों में कई बाज़ार निजी स्वामित्व में भी हैं। पंचायतें बाज़ारों को या तो सबसे अधिक बोली लगाने वाले को नीलाम कर देती हैं या फिर मध्य प्रदेश की तरह पंचायतों के सचिव उनकी देख रेख करते हैं। कर्नाटक में कई ग्रामीण बाज़ारों की देख रेख का दायित्व पंचायतों और बाज़ार समितियों पर संयुक्त रूप से होता है। कुछ जगह बाज़ार समितियां और नगर समितियां भी ग्रामीण बाज़ारों की देख रेख करती पाई गईं। निजी स्वामित्व वाले बाज़ारों का प्रबंध उन लोगों के हाथों में होता है जिनकी जमीन पर बाज़ार लगाये जाते हैं।

बिक्री का तरीका : ग्रामीण बाज़ारों में बिक्री के लिए आने वाला सामान काफी कम मात्रा में होता है इसलिए इनमें वस्तुओं की खरीद-फरोख्त आपसी मोलभाव करके की जाती है। विपणन कानून से नियंत्रित बाज़ारों की तरह इनमें सामान तोलने के लिए लाइसेंस प्राप्त व्यक्ति नहीं होते। यह कार्य निजी तौर पर ही किया जाता है। खरीदे गये माल के लिए भुगतान उसी स्थान पर नकद किया जाता है। जनजातीय इलाकों में स्थित कुछ ग्रामीण बाज़ारों में तो आज भी वस्तु विनिमय प्रणाली प्रचलित है जिसके अंतर्गत एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु का आदान-प्रदान होता है।

बाज़ार शुल्क : विपणन कानून से नियंत्रित बाज़ारों में बाज़ार शुल्क का निर्धारण निर्धारित नियमों के अनुसार किया जाता है। विभिन्न सेवाओं के लिए लिये जाने वाले शुल्क बाज़ार समिति स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर तय करती है। इसके विपरीत ग्रामीण बाज़ारों में ग्राम पंचायतों द्वारा निर्धारित जमीन का किराया वसूल किया जाता है। जहां ग्राम पंचायतें बाज़ारों की नीलामी करती हैं वहां ठेकेदार जमीन का किराया निर्धारित करते हैं और इसे वसूल करने की जिम्मेदारी भी उन्हीं की होती है।

वार्षिक आय : आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु को छोड़कर ग्रामीण बाज़ारों की औसत वार्षिक आय 1,000 रुपये और 4,000 रुपये के बीच है। आंध्र प्रदेश में प्रत्येक बाज़ार की औसत वार्षिक आय 64,000 रुपये और तमिलनाडु में 13,000 रुपये है। कम आमदनी की वजह से बाज़ारों के प्रबंध के लिए जिम्मेदार अधिकारी सुविधाओं के विस्तार या विपणन संबंधी तौर तरीकों में सुधार नहीं कर पाते। इसी कारण व्यावसायिक बैंक भी बाज़ारों के विकास संबंधी गतिविधियों के लिए आम तौर पर ऋण नहीं देते।

व्यापार का परिमाण : सर्वेक्षण से पता चला कि लोग अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के बाद अतिरिक्त बची चीजों में से सिर्फ 20 प्रतिशत ग्रामीण बाज़ारों में बिक्री के लिए लाते हैं। ग्रामीण

बाज़ारों में आने वालों की औसत संख्या में भी विभिन्न राज्यों में काफी अंतर पाया गया। जहां हिमाचल प्रदेश में यह 25 थी तो तमिलनाडु में 921 थी।

परिवहन प्रणाली : सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण बाज़ारों तक सामान लाने का सबसे अधिक प्रचलित साधन बैलगाड़ियां हैं। लेकिन कर्नाटक और तमिलनाडु में लोग साइकिलों और सिर पर रखकर भी सामान बिक्री के लिए लाते हैं।

दूरी : ग्रामीण बाज़ारों तक पहुंचने के लिए किसानों को जो दूरी तय करनी पड़ती है उसमें भी विभिन्न राज्यों में काफी अंतर है। आम तौर पर किसान 5 से 10 किलोमीटर चलकर ग्रामीण बाज़ारों तक पहुंचते हैं।

सामान की मात्रा : प्रत्येक किसान द्वारा बाज़ारों में बिक्री के लिए लाए जाने वाले सामान की मात्रा करीब 10 किलोग्राम से लेकर एक क्विंटल तक होती है।

सड़कों का प्रकार : सर्वेक्षण से पता चला है कि ग्रामीण बाज़ारों की सड़कों में भी काफी भिन्नता है। आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु जैसे कुछ राज्यों में ग्रामीण बाज़ारों तक पहुंचने के लिए पक्की सड़कें उपलब्ध हैं जबकि अन्य राज्यों में आम तौर पर कच्ची सड़कें हैं।

ग्रामीण बाज़ारों में कीमतें : अलग-अलग बाज़ारों में कृषि पदार्थों के मूल्यों में भारी अंतर पाया गया। यही नहीं एक ही बाज़ार में फसली मौसम के दौरान कीमतों में काफी असमानता रहती है। कई बाज़ारों में तो कुछ चीजों की कीमतें उनके लिए सरकार द्वारा निर्धारित समर्थन मूल्य से भी कम पाई गईं।

ग्रामीण बाज़ारों के विकास की नीति

कानूनी ढांचा : ग्रामीण बाज़ारों के विकास के कार्यक्रमों को उपयुक्त कानूनी ढांचा बनाकर सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। इससे ये बाज़ार अधिक कारगर तरीके से कार्य कर सकेंगे। इन बाज़ारों के विकास की जो उपेक्षा हुई है उसका प्रमुख कारण यही है कि इनका स्वामित्व तथा प्रबंध कई एजेंसियों के हाथों में है। इस समय ग्रामीण बाज़ारों का स्वामित्व/प्रबंध या तो निजी मालिकों के पास है या फिर पंचायतों, स्थानीय निकायों या नियंत्रित बाज़ार समितियों के हाथों में है।

निजी स्वामित्व वाले ग्रामीण बाज़ारों में खरीद-फरोख्त पर नियंत्रण के लिए अपनी अलग प्रणाली होती है। पंचायतों के स्वामित्व वाले बाज़ारों की स्थिति में कोई बहुत ज्यादा अंतर नहीं है। सर्वेक्षण से पता चला है कि उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा में जिन पंचायतों के पास अपने ग्रामीण बाज़ार हैं उनमें से अधिकतर पंचायतें इन्हें सबसे अधिक बोली लगाने वाले को नीलाम कर देती हैं। मध्य प्रदेश में पंचायतें अपने सचिवों के माध्यम से ग्रामीण बाज़ारों की देखरेख करती हैं। कर्नाटक में कई ग्रामीण बाज़ारों की देखरेख पंचायतों और बाज़ार समितियों द्वारा संयुक्त रूप से की जाती है।

भारत में कृषि मंडियों की राज्य वार सूची

क्रम सं.	राज्य/ केन्द्र शासित प्रदेश	थोक बाजारों की संख्या (बड़े बाजारों सहित)	प्राथमिक ग्रामीण बाजारों की संख्या (हाट और मंडी सहित)	कुल	नियमित बाजारों की संख्या		कुल	आठवीं योजना मे शामिल किए जाने वाले बाजार
					प्रधान बाजार	सहायक बाजार		
1	2	3	4	5	6	7	8	9
1.	आन्ध्र प्रदेश	817	290	1,107	232	585[1]	817	200
2.	अरुणाचल प्रदेश	—	—	—	—	—	—	—
3.	असम	172	650	822	16	19	35	400
4.	बिहार	443	7,000	7,443	122	706	828	4,000
5.	गोवा	11	8	19	1	4	5	10
6.	गुजरात	355	137	492	148	207	355	100
7.	हरियाणा	262	157	419	97	165	262	80
8.	हिमाचल प्रदेश	29	30	59	10	42	52	—

9.	ज़म्मू कश्मीर	26	47	73	अभी बाज़ार कानून पारित नहीं किया			
10.	कर्नाटक	411	941	1,352	116	295	411	50
11.	केरल	348	2,000	2,348	5	—	5[2]	1,200
12.	मध्य प्रदेश	633	3,000	3,633	279	278	557	1,500
13.	महाराष्ट्र	798	3,500	4,298	245	535	780	2,300
14.	मणिपुर	20	9	29	—	—	—	15
15.	मेघालय	101	82	183	—	—	—	90
16.	मिजोरम	—	—		अभी बाज़ार कानून पारित नहीं किया			
17.	नगालैंड	16	80	96	—	—	—	50
18.	उड़ीसा	163	1,150	1,313	43	87	130	600
19.	पंजाब	662	—	662	143	519	662	—
20.	राजस्थान	383	558	941	139	244	383	300
21.	सिक्किम	10	30	40	अभी बाज़ार कानून पारित नहीं किया			
22.	तमिलनाडु	300	677	977	270	—	270	350
23.	त्रिपुरा	84	306	390	21	—	21	180
24.	उत्तर प्रदेश	645	3,322	3,947	282	383	645	1,650
25.	पश्चिम बंगाल	214	2,925	3,139	39	364	403	1,390
26.	अंडमान निकोबार	—	—	—	अभी बाज़ार कानून पारित नहीं किया			
27.	चंडीगढ़	3	—	3	1	2	3	—
28.	दादरा नागर हवेली	—	—	—	अभी बाज़ार कानून पारित नहीं किया			
29.	दमन दीव	—	—	—	—	—	—	—
30.	दिल्ली	25	7	32	6	7	13	10
31.	लक्ष द्वीप	—	—		अभी बाज़ार कानून पारित नहीं किया			
32.	पांडिचेरी	3	9	12	3	—	3	5
	कुल	6,934	26,805	33,739	2,198	4,442	6,640	15,000

स्रोत —क. भारत में प्राथमिक ग्रामीण बाज़ार सर्वेक्षण - डी. एम. आई.
ख. राज्य कृषि विपणन बोर्ड विभाग से प्राप्त रिपोर्ट

अस्थायी आंकड़े

[1] बाज़ार समिति मुख्यालय के अलावा अन्य स्थानों के बाज़ार

[2] केरल में, भूतपूर्व मद्रास राज्य के मालाबार क्षेत्र में पांच बाज़ारों पर मद्रास वाणिज्यिक फसल विपणन अधिनियम 1933 लागू होता है।

कुछ राज्यों में कृषि उत्पाद विपणन समितियां इन राज्यों के विपणन कानून की नियंत्रक व्यवस्थाओं के अनुसार ग्रामीण बाज़ारों की देखरेख करती हैं। लेकिन सर्वेक्षण से यह पता चला कि ये बाज़ार समितियां ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक बाज़ारों में कम दिलचस्पी लेती हैं क्योंकि अधिक रुचि थोक बाज़ारों और मंडियों के विकास में होती है। ग्रामीण बाज़ारों में बिक्री के लिए कम सामान का पहुंचना, इनका दूर-दराज के इलाकों में स्थित होना, सड़क सुविधाओं का अभाव तथा साल में कुछ ही दिन इनमें कारोबार होना, इन बाज़ारों की उपेक्षा के प्रमुख कारण हैं। इसके अलावा पंचायतें और अन्य ग्रामीण संस्थाएं इन बाज़ारों को अपने हाथ से निकलने नहीं देना चाहती इसलिए वे बाज़ार समितियों के कामकाज में अड़चनें डालती हैं।

अगर विकास की गति तेज करनी है तो ग्रामीण प्राथमिक बाज़ारों की देख-रेख के लिए कोई व्यावहारिक कानूनी ढांचा तैयार किया जाना चाहिए। इनका स्वामित्व अथवा प्रबंध किसी भी दशा में निजी हाथों में नहीं छोड़ा जाना चाहिए। इनकी देख-रेख की जिम्मेदारी या तो पंचायतों या फिर बाज़ार समितियों को ही सौंपी जानी चाहिए। ग्रामीण बाज़ारों के विकास में बाज़ार समितियों की

भूमिका बहुत संतोषजनक नहीं रही है। सत्ताइस हजार ग्रामीण बाज़ारों में बुनियादी ढांचे के विकास का कार्य कोई छोटा-मोटा कार्य नहीं है। यह काफी बड़ा काम है। ग्रामीण बाज़ारों के प्रबंध तथा विकास के लिए पंचायतें उपयुक्त एजेंसी सिद्ध हो सकती हैं। लेकिन यह तभी संभव है जब वे अपना कार्य करने में व्यावसायिक तौर-तरीके और दृष्टिकोण अपनाएं। 73वें संविधान संशोधन के बाद राज्यों द्वारा कानून बनाए जा चुके हैं जिससे पंचायतों को इस तरह के कार्य करने का अधिकार प्राप्त हो गया है।

पंचायतों द्वारा ग्रामीण बाज़ारों के प्रबंध का अधिकार बोली लगाकर नीलाम करने की प्रणाली को हर कीमत पर रोका जाना चाहिए। जहां पंचायत ग्रामीण बाज़ार का प्रबंध संभालने की स्थिति में न हो वहां पास की किसी बाज़ार समिति को यह जिम्मेदारी सौंप दी जानी चाहिए। एक ग्रामीण बाज़ार में बिकने वाली वस्तुएं जहां दूसरे ग्रामीण बाज़ार में तो पहुंचती रहती हैं वहीं वे माध्यमिक बाज़ारों तथा बड़े बाज़ारों में भी पहुंच जाती हैं।

ग्रामीण बाज़ारों के प्रबंधकों का प्रशिक्षण : ग्रामीण बाज़ारों के विकास के कार्यक्रमों की सफलता भली भांति प्रशिक्षित योग्य प्रबंधकों को तैयार करने पर निर्भर है। अगर इस तरह के लोगों का वर्ग तैयार कर लिया जाए तो इन बाज़ारों के संचालन और उनकी देख-रेख की समुचित व्यवस्था हो जाएगी। देश में इस दिशा में काफी प्रगति हो भी चुकी है। केन्द्र तथा कुछ राज्यों में प्रशिक्षण सुविधाएं उपलब्ध हैं। केन्द्र स्तर पर दो संस्थाएं – विपणन तथा जांच निदेशालय, फरीदाबाद और राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान जयपुर प्रशिक्षण देने के कार्य में लगे हैं। जहां तक राज्यों का सवाल है, कर्नाटक ने मैसूर में अपना प्रशिक्षण कालेज खोला है।

लेकिन यह महसूस किया जा रहा है कि ग्रामीण बाज़ारों के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण बाज़ारों के प्रबंधकों के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। अभी ग्राम स्तर के कार्यकर्ताओं और ब्लाक स्तर के कृषि प्रसार अधिकारियों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में कृषि-विपणन विषय को उचित महत्व नहीं मिला है। अपनी उपज बेचने वाले किसानों को ग्रामीण बाज़ारों में उपलब्ध सुविधाओं का अधिक से अधिक लाभ उठाने को प्रेरित करने के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में कृषि पदार्थों के विपणन को उचित महत्व दिया जाना चाहिए।

न्यूनतम सुविधाएं : राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) ने देश में ग्रामीण बाज़ारों के लिए निम्नलिखित न्यूनतम सुविधाओं की सिफारिश की है :

1. कृषि-पदार्थों के भण्डारण, उन्हें तोलने और गुणवत्ता के अनुसार उन्हें छांटने की सुविधाएं उपलब्ध कराना;

2. किसानों की उपज को एकत्र करने, उनकी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अग्रिम धनराशि देने, उनके उत्पादों के प्रसंस्करण, अगले फसली मौसम में बिक्री और अंतिम भुगतान जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराना;

3. किसानों को मंडियों में खुद अपना सामान बेचने और सौदा करने की व्यवस्था का कोई विकल्प उपलब्ध कराना;

4. ग्रामीण बाज़ारों में सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए संचार सुविधाओं, जैसे – टेलीफोन सुविधा वाले डाक और तार घरों की व्यवस्था कराना;

5. ग्रामीण बाज़ारों में खेती में काम आने वाली वस्तुओं और दैनिक जरूरत की चीजों की दुकानों की सुविधा उपलब्ध कराना।

6. ग्रामीण बाज़ार को गांव से जोड़ने और एक गांव को दूसरे गांव से जोड़ने वाली सड़कों की व्यवस्था करना।

प्राथमिक बाज़ारों की बड़ी संख्या तथा धन की कमी को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण प्राथमिक बाज़ारों में सुविधाएं चरणबद्ध तरीके से और किसानों की वास्तविक जरूरतों के अनुसार ही उपलब्ध कराई जानी चाहिए। प्रारंभ में बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराने पर जोर दिया जाना चाहिए। विकास के पहले चरण में निम्नलिखित बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध करायी जा सकती हैं।

(1) छोटा कार्यालय और गोदाम

(2) बिक्री के लिए छत से ढका स्थान

(3) माप-तौल की सुविधाएं

(4) पीने का पानी और साफ सफाई की सुविधाएं

(5) पशुओं को पानी पिलाने के लिए नाद।

इन सुविधाओं की जरूरत बेची जाने वाली वस्तुओं और उन्हें बेचने के तौर-तरीके के अनुसार अलग-अलग बाज़ारों में अलग-अलग हो सकती है। यह बात अब स्वीकार की जाने लगी है कि ग्रामीण बाज़ारों में सहकारी संस्थाओं और कृषि पर आधारित औद्योगिक निगमों की इकाइयों की भागीदारी से किसानों के लिए ये बाज़ार बड़े उपयोगी हो जाएंगे। अगर ग्रामीण बाज़ारों में सहकारी संस्थाओं और दैनिक उपयोग की चीजें बेचने वाले दुकानदारों के लिए भी स्थान निर्धारित कर दिया जाए तो किसानों को बड़ा फायदा होगा। वे खेती बाड़ी में काम आने वाली वस्तुएं तथा रोजमर्रा की जरूरत की चीजें इन दुकानों से खरीद सकेंगे।

विकास की कसौटी

देश के 27,000 ग्रामीण बाज़ारों के विकास के कार्यक्रम को समयबद्ध तरीके से और पूर्व-निर्धारित प्राथमिकता के आधार पर चलाया जाना चाहिए। विकास की योजना किसी एक बाज़ार के अनुसार नहीं होनी चाहिए बल्कि प्रत्येक जिले के लिए एक विस्तृत योजना बनाई जानी चाहिए। इसके पहले चरण में शामिल किये गए ग्रामीण बाज़ारों की आवश्यकताओं को पूरा करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

स्वामित्व : विकास के लिए बाज़ारों के चयन का पहला आधार इनकी स्वामित्व प्रणाली होना चाहिए। बाज़ार समितियों, पंचायत जैसे स्थानीय निकायों और निजी स्वामित्व वाले बाज़ारों में से प्राथमिकता बाज़ार समितियों या स्थानीय निकायों के स्वामित्व वाले बाज़ारों को दी जानी चाहिए। निजी स्वामित्व वाले बाज़ारों के मामले में या तो उनका अधिग्रहण करके विकास करना चाहिए या फिर बाज़ार के लिए वैकल्पिक स्थान ढूंढ़ना चाहिए।

बाज़ारों में पहुंचने वाले माल की मात्रा : विकास के लिए दूसरा महत्वपूर्ण आधार उनमें बिक्री के लिए आने वाली वस्तुओं की मात्रा है। इसमें भी विभिन्न राज्यों में व्यापक अंतर पाए जाते हैं। यही नहीं एक ही जिले के अलग-अलग बाज़ारों में व्यापक अंतर हो सकता है। लेकिन विकास के लिए मात्रा को आधार बनाने से पहले प्रत्येक राज्य या जिले की समग्र स्थिति को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सिर्फ वर्तमान मात्रा को ही ध्यान में नहीं रखना चाहिए बल्कि विकास के बाद बाज़ारों में वस्तुओं की मात्रा क्या होगी, इसका भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

आमदनी : अधिकतर ग्रामीण बाज़ारों की वार्षिक आय इतनी कम है कि उनके पास विकास कार्यों के लिए अतिरिक्त धन नहीं रहता। इसी वजह से अधिकतर ग्रामीण बाज़ार अपनी विकास संबंधी योजनाओं के लिए व्यावसायिक बैंकों से ऋण प्राप्त नहीं कर पाते। इसलिए विकास के पहले चरण में सिर्फ ऐसे ग्रामीण बाज़ारों का चयन करना चाहिए जो अपने संचालन खर्च को पूरा करने के लिए पर्याप्त मात्रा में अतिरिक्त आमदनी कमा सकने की स्थिति में हों।

सरकारी खरीद : इस समय सरकारी, सार्वजनिक और सहकारी क्षेत्र की कई एजेंसियां खरीद का काम करती हैं। वे या तो खुद के लिए या फिर सरकार के लिए खरीद करती हैं। उनके द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं में अनाज के साथ-साथ नकदी फसलें भी शामिल रहती हैं। ये संस्थाएं अक्सर ग्रामीण क्षेत्रों में कई खरीद केन्द्र खोलती हैं। नये ग्रामीण बाज़ारों का चुनाव करते समय ऐसे स्थानों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जहां इस प्रकार के खरीद केन्द्र काम कर रहे हों।

संचार सुविधाएं : ग्रामीण बाज़ारों की उपयोगिता अन्य बातों के अलावा उन तक पहुंचने के लिए उपलब्ध अच्छे सड़क संपर्क पर भी निर्भर है। संचार सुविधाओं के अभाव में संभावित खरीदार ग्रामीण बाज़ारों में खरीद-फरोख्त करने में अधिक रुचि नहीं लेंगे। इसलिए बेहतर तो यही होगा कि ग्रामीण बाज़ारों के विकास के पहले चरण में प्राथमिकता उन बाज़ारों को दी जाए जिनमें अच्छी संचार सुविधाएं उपलब्ध हैं।

भंडारण : किसानों की बड़ी संख्या को देखते हुए ग्रामीण बाज़ारों में भंडारण सुविधा काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। देश भर में ग्रामीण भंडार बनाने के कार्यक्रम के अंतर्गत कई ग्रामीण गोदाम बनाए गए हैं। इसके अलावा सहकारी और भण्डारण क्षेत्र के कार्यक्रमों के अंतर्गत भी गोदाम बनाये गए हैं। इसलिए ग्रामीण बाज़ारों के विकास में ग्रामीण गोदामों के विकास की योजना काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

जमीन की उपलब्धता : ग्रामीण बाज़ारों के विकास की पहली शर्त जमीन का उपलब्ध होना है। इन बाजारों में बिकने के लिए आने वाली वस्तुओं की मात्रा, उनके प्रकार और परिवहन के साधनों के अनुसार जमीन की वास्तविक जरूरत घट-बढ़ सकती है। बाज़ार में क्या-क्या सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी हैं इस पर भी जमीन की आवश्यकता निर्भर करेगी। ग्रामीण बाज़ारों में सभी जरूरी बुनियादी सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए करीब एक हेक्टेयर जमीन की आवश्यकता पड़ती है। वैसे जमीन की न्यूनतम आवश्यकता

इस बात पर भी निर्भर करेगी कि बाज़ार कहां बनाया जा रहा है। मैदानी इलाकों में जितनी जमीन की जरूरत पड़ेगी उसके मुकाबले हिमाचल प्रदेश या पूर्वोत्तर राज्यों की आवश्यकता कुछ और होगी। इसलिए हर जिले में ग्रामीण बाज़ारों का विस्तृत सर्वेक्षण कराने के बाद जिला/राज्य स्तर का मास्टर प्लान बनाया जाना चाहिए।

ग्रामीण बाज़ारों के विकास की संभावना

(अ) ग्रामीण बाज़ार ग्रामीण क्षेत्रों में विपणन संबंधी नयी-नयी बातों को शुरू करने के लिए शानदार प्रशिक्षण स्थल हैं।

(आ) उपयुक्त बाज़ार सूचना प्रणाली विकसित करके निम्नतम स्तर पर फैले प्राथमिक बाज़ारों और कुछ ही स्थानों में स्थित बड़े बाज़ारों के बीच कीमतों में भारी अंतर को कम से कम किया जा सकता है।

(इ) विभिन्न फसली मौसमों के दौरान तथा एक ही फसली मौसम में कीमतों में व्यापक अंतर को ग्राम स्तर पर गिरवी रखकर भंडारण करने की प्रणाली के जरिए दूर किया जा सकता है। साथ ही किसानों को यह सलाह दी जा सकती है कि वे मांग को ध्यान में रखते हुए फसलें उगाएं और बे-मौसमी फसलों पर भी ध्यान दें।

(ई) प्राथमिक बाज़ारों के स्तर पर ही कृषि पदार्थों की गुणवत्ता के अनुसार उनके वर्गीकरण, डिब्बाबंदी, संभरण स्तर के प्रसंस्करण आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(उ) प्राथमिक ग्रामीण बाज़ारों में फसल कटाई के बाद की सुधरी हुई तकनीकों के इस्तेमाल की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ऊ) देश में आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में अच्छी तरह से विकसित प्राथमिक बाज़ार शहरी इलाकों के डिपार्टमेंटल स्टोरों/सुपर बाज़ारों से सीधा संपर्क स्थापित कर सकते हैं। इस तरह खेतों से एकदम ताजा चीजें शहरों में लोगों तक पहुंचाई जा सकती हैं।

निष्कर्ष

विकास की इतनी व्यापक संभावनाओं को देखते हुए देश में कृषि विपणन प्रणाली के विकास की योजना में ग्रामीण बाज़ारों के विकास को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सूक्ष्म तथा स्थूल दोनों स्तरों पर ग्रामीण बाज़ारों के विकास के लिए राज्य स्तर पर मास्टर प्लान बनाने की बड़ी आवश्यकता है। देश में कृषि उत्पादों के विपणन के लिए ग्रामीण प्राथमिक बाज़ारों का विकास बहुत ही जरूरी है।

अनुवाद : राजेन्द्र उपाध्याय

अन्तर

दिलीप धींग जैन

गांव में आठों ही याम
पाई जो नीरवता
शहर में मिली नहीं
वह अर्द्ध-रात्रि में भी,

गांव में सर्वत्र
बहता है स्वच्छ पवन
शहर में पा नहीं सका
उसे उपवन में भी,

गांव में हर आदमी से
पाया जो अपनापन
शहर में मिला नहीं
वह अपनों से भी,

शहर में/औपचारिकताओं की
भरमार है,
गांव में/अनौपचारिक
प्यार ही प्यार है।

द्वारा श्री कन्हैया लाल धींग
पो० : बम्बोरा,
जि० : उदयपुर (राज०)
पिन : 313706

कृषि विपणन आवश्यक क्यों?

सुन्दर लाल कुकरेजा

भारतीय किसानों और कृषि वैज्ञानिकों ने अपनी लगन, मेहनत और कुशलता से यह सिद्ध कर दिया है कि उनमें समय की पुकार सुनने की दक्षता और समय के साथ चलने की क्षमता है। देश को खाद्यान्न के मामले में आत्म निर्भर बनाकर भारत के किसानों ने यह भी साबित कर दिया है कि उचित प्रोत्साहन और सही वातावरण मिलने पर वे भी संसार के किसी भी भाग के किसानों से पीछे नहीं रहेंगे। अपनी छोटी जोतों, पुराने हल बैल, सीमित संसाधनों और मौसम की विषमताओं के बावजूद हमारे किसानों ने अति उच्च तकनीक, बड़ी-बड़ी मशीनों और विस्तृत भूभाग का उपयोग करने वाले कृषकों की चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना किया है और भारत ने कृषि उत्पादन ऐसी स्थिति तक बढ़ा लिया है कि अब हम अपनी आवश्यकता पूरी करने के साथ ही अनाज का निर्यात करने की स्थिति में भी आते जा रहे हैं।

कृषि के क्षेत्र में सुखद स्थिति

किसानों के साथ-साथ हमारे कृषि वैज्ञानिकों ने भी अपने शोध और अनुसंधान द्वारा भारतीय कृषि क्षेत्र में नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। पौधों की किस्मों में सुधार, नई किस्मों का विकास, अधिक उपज देने वाले, बीमारी से लड़ने में सक्षम और अधिक पौष्टिकता देने वाली किस्मों की खोज तथा अपनी इन नई खोजों व तकनीकों को गांव-गांव तक पहुंचाने के लिए प्रसार तंत्र के विस्तार द्वारा हमारे कृषि वैज्ञानिकों ने भारत को ऐसी सुखद स्थिति में पहुंचा दिया है जहां दुर्भिक्ष और अकाल, अभाव और भूख के लिए कोई स्थान नहीं बचा है। हम अनाज व अन्य कृषि उत्पादों के मामले में न केवल आत्म-निर्भर हैं, अपितु उसका विशाल सुरक्षित भण्डार भी हमारे पास उपलब्ध है।

किसान आज भी विपन्न

किन्तु जिस तरह उद्योग चलाने के लिए केवल मशीनें लगा लेना ही काफी नहीं है, उसके लिए कच्चा माल, बिजली, सड़कें, संचार और बाजार भी जरूरी है, उसी प्रकार खेती के लिए केवल जमीन होना ही काफी नहीं है। उसके लिए भी पानी, बीज, खाद, कीटनाशक और कड़ी मेहनत की आवश्यकता है। भारत की 70 प्रतिशत आबादी ही गांवों में बस कर खेती पर निर्भर नहीं है, हमारे अधिकांश उद्योग भी अपने कच्चे माल की आपूर्ति के लिए कृषि क्षेत्र पर आश्रित हैं। अतः कृषि क्षेत्र का विस्तार और विकास केवल गांवों की उन्नति के लिए ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण देश और उसके औद्योगिक विकास के लिए भी आवश्यक है।

किन्तु दुःखद स्थिति यह है कि गांवों और कृषि के विकास पर जितना ध्यान देना अपेक्षित है, उतना दिया नहीं जा रहा और हमारी सारी सद्इच्छाओं के बाद भी ग्रामीण जीवन अभी तक उपेक्षित और आवश्यक सुविधाओं एवं पूंजी निवेश से वंचित है। देश को खुशहाल और सम्पन्न बनाने वाला किसान आज भी स्वयं विपन्न और खस्ताहाल है। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि साल भर जी तोड़ मेहनत करने के बाद भी किसान को उसकी उपज का उतना मूल्य नहीं मिल पाता जो उसे अपने लिए भरपेट भोजन और तन के कपड़े अथवा अन्य अनिवार्य आवश्यकताएं उपलब्ध करा सके। हालांकि किसानों की अशिक्षा, नवीनतम कृषि तकनीकों को अपनाने के प्रति उनके रुझान में कमी और खेती के काम आने वाले उपकरणों, बीज, खाद, बिजली, पानी, कीटनाशक आदि की मंहगाई भी उनके लिए एक बड़ी समस्या है।

मेहनत का मूल्य वसूलने की स्थिति में नहीं

किसानों को उनकी उपज का लाभकारी मूल्य न मिलने का एक कारण यह भी है कि वह अपनी उपज बेचने के लिए अपनी मर्जी और लागत से उसका मूल्य निर्धारित नहीं कर सकता। अपनी मेहनत का मूल्य वसूलने के लिए उसे खरीदार की मर्जी और इच्छा का मोहताज होना पड़ता है। उद्योगों में उद्यमी अपनी लागत, मेहनत और लाभ मिला कर स्वयं अपने उत्पाद का मूल्य तय करता है और उसी दाम पर उसे बेचने का प्रयास करता है जबकि किसान मेहनत तो खुद करता है किन्तु उसके परिश्रम का मूल्यांकन दूसरे लोग करते हैं। कई ऐसे कारण हैं जिनसे किसान चाहते हुए भी अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं ले पाते।

इसका सबसे प्रमुख कारण तो यह है कि खेतों में पैदा की गई उपज—अनाज, दालें, गन्ना, कपास, फल और सब्जियां आदि

ऐसी वस्तुएं होती हैं जो बहुत दिनों तक सहेज कर नहीं रखी जा सकतीं। उनकी बिक्री में देरी से पूरी उपज ही खराब हो जाती है और किसान के हाथ कुछ भी नहीं लग पाता। इसलिए भी किसान को मजबूर होकर चाहे जिस दाम पर अपना माल जल्दी से जल्दी बेचना पड़ता है और इसी जल्दबाजी का किसान को बहुत नुकसान उठाना पड़ता है जबकि उसका माल खरीदने वाले उसकी इस मजबूरी का अनुचित लाभ उठा कर किसान का शोषण करने में कोई संकोच नहीं करते।

उसकी इस मजबूरी का एक और कारण यह होता है कि महीनों तक धूप, धूल, सर्दी-पानी में रहकर किसान जो फसल उगाता है, उसका लाभ चखने के लिए इतने दिनों तक प्रतीक्षा करता है और अपनी सारी जरूरतों को फसल कटने के बाद तक के लिए टालता रहता है और जब फसल तैयार हो जाती है तो उसका दाम वसूलने के लिए भी वह लालायित, बल्कि व्यग्र हो जाता है और इसी व्यग्रता में अपना आगा-पीछा सोचे बिना वह जो भी दाम मिले, उस पर अपनी उपज बेच देने को तैयार हो जाता है। फसल की बिक्री से मिलने वाला पैसा ही उसकी सारी आशाओं का केन्द्र बन जाता है और उसे पाने के लिए वह अधिक इंतजार नहीं कर पाता। जिस दिन उसके घर में फसल कट कर आती है, वही दिन उसके लिए दीवाली का दिन होता है।

मजबूरी को मजबूती में बदलने के उपाय

किसान की इस मजबूरी को उसकी मजबूती में बदलने के लिए यह जरूरी है कि वह आर्थिक रूप से इतना सम्पन्न हो जाए कि अनाज या उपज की चाहे जिस दाम पर बिक्री की उसे आवश्यकता न रह जाए। इसके दो उपाय हो सकते हैं। एक तो यह कि उसे इतना उधार या कर्ज मिलता रहे कि अपना माल आनन-फानन में बेचे बिना भी वह अपनी जरूरतों को पूरा कर सके और अपना शोषण करने वालों के चंगुल से बचा रह सके। दूसरा उपाय यह हो सकता है कि उसे अनाज के भण्डारण की ऐसी सुविधाएं उपलब्ध करा दी जाएं कि माल के सड़ने-गलने की चिन्ता से मुक्त हो जाए और जब उसे बाजार में अच्छे दाम मिलने की उम्मीद हो, तभी उसे बेचे। लेकिन इन दोनों ही उपायों में भारी पूंजीनिवेश की जरूरत है और पूंजी का प्रवाह कृषि से विपरीत दिशा की ओर चल रहा है।

किसी संकट या प्राकृतिक आपदा के समय किसान को उधार या कर्ज देकर उसकी मदद करना एक अलग बात है, और उसे साल दर साल इस उधार का आदी बना देना बिलकुल दूसरी बात। ऐसा करना एक तो सम्भव नहीं है कि हर किसान को उधार देने का प्रबंध किया जा सके और फिर उसकी वसूली की व्यवस्था की जाए। इस पर भारी लागत भी आएगी। यदि ऐसा करना सम्भव भी हो तो भी वांछित नहीं होगा। अपनी मेहनत के बल पर जिन्दा रहने वाला किसान किसी के दिए पैसे पर, चाहे वह उधार ही क्यों न हो, हमेशा के लिए निर्भर नहीं रहना चाहेगा।

दूसरा उपाय लागू करने के भी दो साधन हो सकते हैं। या तो जहां किसान के खेत और खलिहान हैं, वहीं उनकी उपज के भण्डारण की भी समुचित व्यवस्था की जाए अथवा जहां ऐसी सुविधा उपलब्ध हो, वहां तक किसान को अपनी उपज ले जाने और पहुंचाने के लिए व्यवस्था की जाए। भण्डारण गृहों और प्रशीतकों की व्यवस्था तकनीकी दृष्टि से भी और लागत की दृष्टि से भी हर स्थान पर करना व्यावहारिक नहीं है। इसलिए किसान को यह सुविधा मिलनी चाहिए कि भण्डारगृहों तक अपनी उपज पहुंचा सके।

लेकिन इन दोनों ही परिस्थितियों में देश के ग्रामीण इलाकों में सड़कों और बिजली तथा संचार की व्यापक और विस्तृत व्यवस्था करनी होगी। किसान के खेत से दूर बने भण्डारगृह तक अथवा गांव के भण्डारगृह से उपभोक्ता व खरीदार तक सामान ले जाने के लिए अच्छी सड़कों का जाल बिछाना होगा, सही समय पर माल की आपूर्ति के लिए संचार व्यवस्था में सुधार करना होगा और भण्डारगृहों के संचालन के लिए बिजली का प्रबंध करना होगा।

अगर ऐसा करना सम्भव हो जाए तो किसान की काफी सारी परेशानियां दूर हो जायेंगी। वह न केवल अपनी उपज का उचित मूल्य वसूल कर सकेगा, बल्कि इससे ग्रामीण क्षेत्रों की जीवन-पद्धति में ही व्यापक परिवर्तन आ जायेंगे। बिजली, सड़कों और संचार की अच्छी व्यवस्था हो जाने से ग्रामीण इलाकों में शिक्षा, स्वास्थ्य और समाज के अन्य कल्याणकारी कार्यों को भी बढ़ावा मिलेगा और जीवन-स्तर में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देगा।

बिचौलियों का अंत

किसान को उसकी उपज का समुचित मूल्य देने के लिए यह जरूरी है कि उसे बिचौलियों के चंगुल से मुक्त कराया जाए। एक पुरानी कहावत है कि किसान खेत में लुटता है और उपभोक्ता बाजार में लुटता है लेकिन बीच में दलाल या बिचौलिए फलते फूलते हैं। इस स्थिति का अंत करने के लिए यह जरूरी है कि

किसान अपना माल सीधा उपभोक्ता को बेचे जिससे दोनों का लाभ और परस्पर हित साधन हो सके।

शासन की ओर से हर वर्ष फसल की लागत व उसमें लगी पूंजी के हिसाब से अनाज व अन्य कृषि जिन्सों का वसूली मूल्य तय किया जाता है, लेकिन इस मूल्य पर लिया गया अनाज सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा पूर्व निर्धारित दाम पर बेचने के लिए उपयोग में लाया जाता है जबकि वसूली मूल्य और बाजार मूल्य में दो और ढाई गुने तक का अंतर दिखाई देता है। वसूली मूल्य किसान को उसकी फसल का लागत मूल्य या न्यूनतम मूल्य अवश्य देता है, लेकिन उसे बाजार भाव नहीं मिलता जबकि अधिकांश औद्योगिक माल का उपभोक्ता भी किसान ही है और उसे वह माल बाजार भाव पर ही खरीदना पड़ता है।

इस समस्या का एक निदान यह हो सकता है कि किसान अपनी सहकारी संस्थाओं को अधिक मजबूत करें और उनके माध्यम से अपनी उपज का विपणन करें। कृषि सहकारी संगठनों की मदद से किसान सामूहिक रूप से भण्डारण की व्यवस्था भी कर सकेंगे और अपने उत्पादों के उचित मूल्य भी पा सकेंगे।

पिछले काफी समय से भारतीय कृषि उत्पादों—विशेषकर फूलों-फलों, चाय और काफी के निर्यात की सम्भावनाओं में काफी वृद्धि हुई है, लेकिन किसान की नियति वही बनी हुई है। निर्यात से मिलने वाले अतिरिक्त लाभ पर दलाल या सरकारी तंत्र कब्जा कर लेते हैं और किसान को उसका कोई भाग नहीं मिल पाता। अगर किसान सीधे ही निर्यात कर सकें - जो भारतीय किसानों की वर्तमान दशा को देखते हुए निकट भविष्य में सम्भव नहीं लगता—अथवा अपनी सहकारी संस्थाओं द्वारा निर्यात कर सकें तो उनकी दशा में काफी सुधार हो सकता है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग ग्रामीण इलाकों में लगें

इसी सन्दर्भ में एक उपाय यह किया जा सकता है कि खाद्य प्रसंस्करण के जितने भी नए उद्योग लगें, उन्हें शहरी सीमा से दूर, और देहाती इलाकों में ही लगाने की अनुमति दी जानी चाहिए। इससे किसानों की जल्दी खराब हो सकने वाली उपज के भण्डारण की समस्या का समाधान भी हो जाएगा, देहातों के भूमिहीनों को रोजगार के अवसर भी मिल सकेंगे और तैयार माल की गुणवत्ता में भी सुधार सम्भव होगा। इसके लिए नीतिगत रूप से निर्णय लेकर ही उसे लागू करना होगा।

भारतीय किसान की असली समस्या पैदावार बढ़ाना नहीं, उसे सही दाम पर बेचने और उसका उचित मूल्य प्राप्त करने की है। जब तक उसकी उपज की सही विपणन व्यवस्था नहीं हो जाती उसकी क्रय शक्ति नहीं बढ़ सकती और इसका पूरी अर्थ व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। हमारे नीति नियोजकों की सबसे बड़ी चिन्ता यही है कि कृषि उत्पादन और औद्योगिक क्षेत्र में इतनी उत्साहजनक उपलब्धियों के बावजूद आबादी का 30 प्रतिशत भाग गरीबी की रेखा से नीचे, कंगाली का जीवन क्यों बिता रहा है। इन कंगालों का अधिकांश भाग गांवों में रहता है और उनमें से अधिकतर ऐसे छोटे किसान हैं जो अपनी छोटी-छोटी जोत भी खोकर भूमिहीन कृषि मजदूर बन गए हैं। इन्हीं में से अधिकांश रोजगार की तलाश में गांव छोड़कर शहरों की ओर दौड़ रहे हैं। इससे शहरों में सस्ते मजदूर तो मिल जाते हैं किन्तु सामाजिक असन्तुलन, आक्रोश और असमानता भी बढ़ रही है।

कृषि में पूंजी निवेश बढ़ाने की जरूरत

कृषि विपणन की समस्या हल करने के लिए यह भी जरूरी है कि कृषि में पूंजी निवेश की मात्रा बढ़ाई जाए। कृषि क्षेत्र में पूंजी की लागत अब भी उतनी ही है जितनी 1970-71 में थी। कृषि क्षेत्र में निजी पूंजी का निवेश तो अब नाममात्र को रह गया है। नई अर्थ व्यवस्था में जो नया पूंजी निवेश का दौर चल रहा है, उसमें से अगर दसवां भाग भी कृषि क्षेत्र में लगाया जा सके तो देश के किसानों का भाग्य पलट सकता है।

बी-7, प्रेस एन्कलेव,
साकेत, नई दिल्ली 110017

ग्रामीण युवा स्वरोजगार तलाशें

कुसुम गोयल

भारत वर्ष में जितने युवक बेरोजगार हैं उनमें से 87 प्रतिशत युवक ग्रामीण क्षेत्र के रहने वाले हैं। इन युवाओं को सही दिशा-निर्देशों की आवश्यकता है। इन दिशा निर्देशों के अभाव में वे इधर-उधर भटकते रहते हैं। उन्हें नहीं पता कि गांव से बाहर रहने वाले युवक काम पर कैसे लगे हैं। इसलिए गांवों में इस बारे में जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है। इसके लिए जिला उद्योग केन्द्र अथवा स्वयंसेवी संगठनों को चाहिए कि उनके कर्मचारी गांवों में जाएं तथा ग्रामीण युवाओं में स्वरोजगार के प्रति मनोवैज्ञानिक आधार तैयार करके उन्हें धन की उपलब्धता, मशीनों और कच्चे माल की खरीद, तैयार उत्पादों की आपूर्ति तथा इससे सम्बन्धित अन्य प्रक्रियाओं की जानकारी दें जिससे गांवों के आर्थिक स्वरूप में भी परिवर्तन आए और ग्रामीण युवाओं का शहरों की ओर पलायन रोका जा सके।

गांवों में स्वरोजगार की सम्भावनाएं

ग्रामीण क्षेत्रों से हाई स्कूल या इंटरमीडिएट किए हुए युवकों को चाहिए कि वे शहरों की चकाचौंध अथवा तथाकथित उच्चशिक्षित ग्रामीण युवकों के शहरों के प्रति बढ़ते मोह का अन्धानुकरण न करें बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में ही अपने लिए और अपने आश्रितों अथवा मित्रों के लिए रोजगार की सम्भावनाओं की तरफ ध्यान दें। मैट्रिक अथवा माध्यमिक शिक्षा के बाद वे किसी व्यक्ति अथवा संस्था का नौकर बनने की बजाय स्वरोजगार के प्रति उन्मुख हों। इस कार्य के लिए सरकारी स्तर पर उन्हें प्रोत्साहन और सहायता की व्यवस्था है। ग्रामीण युवकों को चाहिए कि वे इस व्यवस्था का भरपूर लाभ उठाकर अपने लिए रोजगार तैयार करें।

जिला उद्योग केन्द्र

ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए सरकार ने वर्ष 1978 में केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त योजना के तहत जिला उद्योग केन्द्रों की स्थापना की है। जिला उद्योग केन्द्रों के तहत स्थापित उद्योगों को केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार कुल व्यय का पचास प्रतिशत का अनुदान देती है। जिला स्तर पर लघु उद्योगों के विकास के लिए भारत सरकार ने यह क्रान्तिकारी कदम 1 मई 1978 को पहली बार उठाया था। आज देश के 422 केन्द्रों पर जिला उद्योग केन्द्रों द्वारा यह स्वरोजगार योजना चलाई जा रही है। देश भर में इस समय लगभग 440 जिले हैं। देश के महानगरों में लघु उद्योग केन्द्रों की स्थापना की गई है। इनकी योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए शत-प्रतिशत सहायता केन्द्रीय सरकार देती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ग्रामीण युवक उद्योग विभाग की इस स्वरोजगार योजना का लाभ कैसे उठाएं। सबसे पहले युवकों को यह निर्णय कर लेना चाहिए कि वे सिर्फ सरकारी सहायता के बल पर नहीं बल्कि अपने मनोबल के भरोसे इस दिशा में कदम रखें। ऐसे युवक इस क्षेत्र में बिल्कुल कदम न रखें जो नौकरी के न मिलने के कारण मजबूर होकर इस योजना में प्रवेश करना चाहते हैं। स्वरोजगार के साधन जुटाने के इच्छुक युवकों को जिला उद्योग केन्द्र से सम्पर्क करना चाहिए। वे अपना उद्योग किस रूप में आरम्भ करना चाहते हैं और क्षेत्र में उस उद्योग की क्या सम्भावनाएं हैं, इन तथ्यों की बारीकी को समझकर ही उन्हें उद्योग की स्थापना के लिए कार्य करना होगा। जिस क्षेत्र का वह युवक रहने वाला है, उस क्षेत्र में किस तरह के लघु उद्योग अधिक सफल हो सकते हैं और उनके लिए कच्चा माल तथा अन्य आवश्यक सहयोग किस स्तर पर तथा कहां-कहां से उपलब्ध हो सकते हैं, इन विषयों से जुड़ी जानकारी जिला उद्योग केन्द्र से उपलब्ध हो सकती है।

मोटे तौर पर उद्योग विभाग ने जिला उद्योग केन्द्रों को ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित होने वाले लघु उद्योगों की सूची दे रखी है। इस सूची में ऐसे उद्योगों को स्थान दिया है जिनका बाजार सर्वत्र सुलभ हो तथा उद्योग की स्थापना आदि में समस्याएं अधिक न हों। इस सूची में अधिकांश ऐसी वस्तुओं के उत्पादन के लघु उद्योगों की स्थापना की सलाह दी गई है जो आम जरूरत की वस्तुएं हों और जिनका भरपूर इस्तेमाल, ग्रामीण क्षेत्रों में किया जाता है। सामान्य तौर पर विभाग ने इन लघु उद्यमों को तीन हिस्सों – रेड कैटेगेरी, औरेंज कैटेगेरी और ग्रीन कैटेगेरी में रखा है। रेड कैटेगेरी में टायर ट्यूब, बड़ी आटा चक्की, खाद्य तेल पिराई चक्की (बड़ी), स्टीम, बायलिंग प्रोसेजेज तथा सिथेंटिक रहित साबुन की फैक्टरी, घरेलू तथा कार्यालयी उपयोग की वस्तुएं, ऑपटिकल

ग्लास, पैट्रोल भण्डारण तथा उसके स्थानान्तरण की सुविधा, बेकरी उत्पादन, खाद्य एवं औद्योगिक उपयोग का तेल, चीनी मिल, क्राफ्ट पेपर मिल, कास्टिक सोडा, रंग वार्निश आदि उद्योग हैं। ओरेंज कैटेगेरी में फोटो फ्रेमिंग तथा दर्पण, कॉटन सिलाई तथा बुनाई, रेस्टोरेंट, साफ्ट ड्रिंक बोटलिंग प्लांट, स्टील फर्नीचर, लघु कपड़ा उद्योग, प्लास्टिक इंडस्ट्री, गन्ने के रस की मशीन, डाई निर्माण उद्योग शामिल हैं। जबकि ग्रीन कैटेगेरी में आटा चक्की, दाल मिल, मुंगफली छिलका निकालने की मशीन, टेलरिंग और गारमेंट, हैंडलूम बुनाई, शू-लेस उत्पादन, चमड़े के जूते-चप्पल, वाद्य यन्त्रों का निर्माण, खेल सामग्री, कार्ड बोर्ड बाक्स, विज्ञान तथा गणित के उपकरण, काटन और प्लास्टिक की रस्सियों का निर्माण, कार्पेट बुनाई, खिलौने, मोमबत्ती, शीतगृह (लघु), पेपर पिन या यू-पिंस, चश्मे के फ्रेम, प्रिंटिंग प्रेस, रबर आदि की वस्तुओं का निर्माण होता है।

सूची बहुत लम्बी है जिसका अवलोकन जिला उद्योग केन्द्र पर जाकर किया जा सकता है। यह निर्णय युवकों को ही लेना होता है कि वे किस प्रकार का उद्योग स्थापित करना चाहेंगे। इन उद्योगों की स्थापना के लिए जिला उद्योग केन्द्र हर स्तर पर उद्यमी की सहायता की व्यवस्था भी करता है। यदि कभी कभार कोई उद्योग क्षेत्र विशेष अथवा परिस्थिति विशेष या उद्यमी की विस्तृत योजना के कारण उद्योग केन्द्र की सामान्य अनुमानित लागत से ज्यादा बैठता है तो इसके लिए दूसरी संस्थाओं से भी वित्तीय सहायता की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं। कई बार यह केन्द्र उद्यमी को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से दूसरी संस्थाओं से उसे ऋण दिलाने की व्यवस्था भी करता है। इस आशय की पूरी जानकारी के लिए भी उद्यमी इन केन्द्रों से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।

श्रमिकों की कुशलता को बढ़ाने के लिए जिला उद्योग केन्द्रों द्वारा विशेष कार्यशालाएं भी प्रायोजित की जाती हैं। ऐसी स्थिति में केन्द्र उन सभी उद्यमियों को कार्यशाला में सम्मलित होने का निमंत्रण देते हैं जिन्होंने जिले में लघु उद्योग स्थापित कर लिया है। इन कार्यशालाओं में जहां उद्यमी की प्रबंध क्षमता को बढ़ाने के लिए सुझाव दिए जाते हैं वहीं उन्हें क्षेत्र विशेष में कार्य-कौशल का आंशिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इसके अतिरिक्त देश में अनेकों केन्द्रों पर लघु उद्योग संस्थान चल रहें हैं जिनमें उद्यमियों को बाकायदा प्रशिक्षण की व्यवस्था है। उद्यमियों को जिला उद्योग केन्द्रों से उद्योग की स्थापना के लिए उपकरणों को खरीदने, उनकी उपलब्धता तथा अनुमानित लागत आदि की पूर्ण जानकारी दी जाती है।

सरकार द्वारा प्रोत्साहन

सरकार ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए स्वयं इन उद्योगों द्वारा तैयार कुछ सामान को खरीदती है। उद्यमियों को उन उत्पादनों की सूची भेजती है जिनकी खरीद सरकार करती है। सरकार द्वारा खरीद के लिए आरक्षित उत्पादन की खरीद के कारण उद्यमी को फिर अपने उत्पादन को बेचने के लिए इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। उद्यमी कोटेशन के आधार पर सरकार को अपने उत्पाद बेचता है।

निस्संदेह लघु उद्योगों की स्थापना से देश का ग्रामीण क्षेत्र आत्म निर्भर हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या को हल किया जा सकता है और ग्रामीण क्षेत्रों के युवकों का गांवों से शहरों को पलायन रोका जा सकता है। लेकिन इस स्थिति के लिए सरकार को स्वयं विशेष रूप से आगे आना होगा। सरकार को चाहिए कि वह लघु उद्योगों के विकास और विस्तार के बारे में उद्यमियों के सुझावों को सुनने के लिए विशेष कक्ष स्थापित करे और उद्यमियों की शिकायतों पर कार्यवाही की जाए।

ग्रामीण युवकों का दायित्व बनता है कि वे जिस गांव में पले, पढ़े और बड़े हुए हैं उस गांव को खुशहाल बनाने में अपनी भूमिका निभाएं। यह सही है कि भूमिका का निर्वाह काफी जटिल है लेकिन सरकार की नीतियों ने इस जटिलता को अत्यन्त लचीला बना दिया है जिसका पूरा-पूरा लाभ ग्रामीण युवकों को उठाना चाहिए और लघु उद्योगों की स्थापना के लिए आगे आना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों के युवकों को चाहिए कि वे पलायन की भावना को छोड़कर ग्रामीण क्षेत्रों में ही अपने उज्ज्वल भविष्य की राह तलाशें। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार की पर्याप्त सम्भावनाएं उपलब्ध हैं, बस जरूरत उन्हें सिर्फ बारिकी से देखने, विचारने और क्रियान्वित करने की है।

गली न० 6, मकान न० 5786,
न्यू चन्द्रावल रोड़,
दिल्ली – 110007

कृषि विपणन की समस्याएं

नवीन पन्त

औद्योगिक और प्रौद्योगिक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति के बावजूद हमारी अर्थ व्यवस्था अभी भी कृषि पर आधारित है। पिछले चार दशकों के दौरान भारत ने कृषि क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है किन्तु हमारी ग्रामीण जनता अभी भी गरीबी और निर्धनता का जीवन बिता रही है। इसका एक कारण यह है कि किसानों को कृषि उपज में वृद्धि का पूरा लाभ नहीं मिल रहा है। बिचौलिये, आढ़तिये और व्यापारी किसान को आज भी उसकी उपज का पूरा लाभ नहीं देते।

देश की बिक्री व्यवस्था पर अभी भी व्यापारियों और बिचौलियों का प्रभुत्व है। ये लोग किसान को उसकी उपज का कम से कम मूल्य देते हैं और उपभोक्ता से खाद्यान्नों तथा कृषि उपज का अधिकतम मूल्य लेते हैं।

कृषि क्षेत्र में सफलता

देश ने स्वतंत्रता के बाद कृषि उत्पादन बढ़ाने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति की है। 1949-50 में देश में केवल 5.49 करोड़ टन खाद्यान्नों का उत्पादन होता था जो 1984-85 में बढ़कर 14.55 करोड़ टन और 1993-94 में 18 करोड़ टन से अधिक हो गया। इस वर्ष खाद्यान्न उत्पादन 19 करोड़ टन के आस-पास पहुंचने की संभावना है। 1950 में प्रति व्यक्ति अनाज की उपलब्धता 395 ग्राम प्रतिदिन प्रति व्यक्ति थी जो अब जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि के बावजूद 500 ग्राम प्रति दिन प्रति व्यक्ति तक पहुंच गई है।

कृषि क्षेत्र में इस उल्लेखनीय सफलता का श्रेय हमारे मेहनती किसानों, कृषि वैज्ञानिकों और केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा चलाए जा रहे कृषि विस्तार कार्यक्रमों को है। हमारे किसानों ने, जिन्हें अशिक्षित और रुढ़िवादी समझा जाता था, उत्साह से कृषि के नए तौर तरीके, अधिक उपज देने वाले संकर बीजों और रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग अपनाया।

कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए सरकार ने किसानों को उत्कृष्ट किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक, कीड़ा मार दवाएं, सिंचाई सुविधाएं उदारता से उपलब्ध कराईं। इसी के साथ किसानों को उदार ऋण उपलब्ध कराए गए। 1984-85 में किसानों को 5,810 करोड़ रुपये के ऋण दिए गए जो 1989-90 में 12,570 करोड़ रुपये हो गए। इसके बाद इसमें और वृद्धि हुई है। इसके परिणाम स्वरूप साठ के दशक के अन्त में अधिकांश किसानों के पास बिक्री के लिए फालतू अनाज की उपलब्धता में वृद्धि होनी शुरू हुई जिसमें बाद के वर्षों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

इधर देश के कृषि क्षेत्र में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए हैं। फसल चक्र में अनेक परिवर्तन हो गए हैं। गर्मियों में बड़े पैमाने पर मूंगफली, सोयाबीन और सूरजमुखी जैसी गैर पारंपरिक फसलें उगाई जाती हैं। देश के कुछ भागों में किसान खरीफ और रबी की फसल लेने के बाद थोड़े समय में तैयार होने वाली एक तीसरी फसल भी ले रहे हैं। खाद्यान्नों के अलावा दलहनों, तिलहनों, फलों और सब्जियों के उत्पादन में भी काफी वृद्धि हुई है। इस उत्पादन वृद्धि ने किसानों के सामने भंडारण और बिक्री की समस्याएं उत्पन्न कर दी हैं। यह समस्या साठ के दशक के अन्त में सामने आनी शुरू हो गई थी। सरकार ने तत्काल इस ओर ध्यान दिया और कृषि उपज के भंडारण और बिक्री व्यवस्था के लिए ठोस कदम उठाए।

किसानों को उचित मूल्य दिलाने के उपाय

अगर खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के बावजूद किसान को उसकी उपज के उचित और लाभप्रद मूल्य नहीं मिलते, उसके जीवन में खुशहाली और रौनक नहीं आती तो किसान की मेहनत करने की इच्छा कमजोर पड़ जाती है। वह अगले वर्ष अधिक उत्पादन के लिए कमर तोड़ मेहनत नहीं करता। अगर बिक्री की समुचित व्यवस्था के अभाव में किसान को अपनी उपज औने-पौने दामों पर बेचनी पड़ती है और बाद में उसे पता लगता है कि उसकी उपज उपभोक्ता को दूने दामों पर मिल रही है तो वह स्वयं को ठगा महसूस करता है।

किसान को उसकी उपज का उचित मूल्य मिले इसलिए सरकार प्रति वर्ष अगली फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती है। अगर किसान को अपनी फसल के अच्छे मूल्य मिलते हैं तो वह उसे कहीं भी बेच सकता है, लेकिन अगर उसे सरकार द्वारा घोषित मूल्यों से कम मूल्य मिलते हैं तो वह भारतीय खाद्य

निगम या राज्य सरकारों के खरीद केन्द्रों पर अपनी उपज बेच सकता है। इससे किसानों को उनकी फसल के उचित मूल्य दिलाने की समस्या आंशिक रूप से हल हो जाती है।

सामान्यतः भारतीय खाद्य निगम और राज्य सरकारों के खरीद केन्द्र बड़े किसानों की समस्या का समाधान करते हैं। कभी-कभी ये केन्द्र ऐसे स्थानों पर होते हैं जहां पहुंचना छोटे किसानों के लिए अपेक्षाकृत कठिन होता है। अतः अधिकांश छोटे किसान अपनी उपज मंडियों में ले जाते हैं।

फसल कटने और उसे मंडी ले जाने से पहले किसान के सामने भंडारण की समस्या होती है। कभी-कभी भंडारण की समुचित व्यवस्था के अभाव में किसान को अपनी फसल खेत में खुले में रखनी पड़ती है। खुले में रखे अनाज को आंधी, पानी, तूफान से नुकसान पहुंचता है। जंगली जानवर और चूहे अवसर पाकर उसका एक बड़ा हिस्सा चट कर जाते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 1979-80 से देश के ग्रामीण क्षेत्रों में वैज्ञानिक भंडारण की सुविधा प्रदान करने के लिए ग्रामीण गोदामों की व्यवस्था की।

इस योजना के दो उद्देश्य हैं। पहला, किसानों को भंडारण की उचित व्यवस्था के अभाव में अपनी उपज तत्काल न बेचनी पड़े। दूसरा कीड़े, चूहों, सड़ने-गलने से उनकी उपज को नुकसान न हो। 31 मार्च 1993 को देश में ऐसे 4,835 ग्रामीण गोदामों के निर्माण की मंजूरी दी जा चुकी थी। इन गोदामों के पूरा होने पर इनमें 28 लाख टन से अधिक खाद्यान्न रखा जा सकेगा। केन्द्र सरकार इनके निर्माण के लिए 31 मार्च 1993 तक 4,378 करोड़ रुपये की राशि राज्यों को दे चुकी थी। इन गोदामों में से 3,813 का निर्माण पूरा किया जा चुका है। इस योजना के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में 520, बिहार में 172, मध्य प्रदेश में 468, हरियाणा में 66 और राजस्थान में 138 ग्रामीण गोदामों के निर्माण की मंजूरी दी गई। पिछले वित्त वर्ष के अन्त तक उत्तर प्रदेश में 425, बिहार में 146, मध्य प्रदेश में 328, हरियाणा में 56 और राजस्थान में 81 ग्रामीण गोदामों का निर्माण पूरा किया जा चुका था।

किसानों की उपज के भंडारण की उचित व्यवस्था करने के साथ-साथ सरकार उन्हें उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाने के लिए भी प्रयत्नशील है। आदर्श बिक्री व्यवस्था में उत्पादकों (अर्थात किसानों), व्यापारियों और उपभोक्ताओं तीनों के हितों की रक्षा की जाती है। लेकिन इसमें गड़बड़ तब होती है जब व्यापारी किसान को कम मूल्य देकर उपभोक्ता से बहुत अधिक मूल्य वसूल करना चाहते हैं। वह उपभोक्ता को अच्छा, मानकीकृत माल भी नहीं देते। व्यापारियों की इन गतिविधियों के पीछे कम से कम समय में अधिक से अधिक धन कमाने की इच्छा रहती है।

लेकिन अब उपभोक्ता अपने हितों की रक्षा के लिए एकजुट हो गए हैं। सरकार ने भी उपभोक्ताओं की रक्षा के लिए कानून बनाए हैं। अब उपभोक्ता यह मांग करने लगे हैं कि उन्हें जांची-परखी वस्तुएं दी जाएं। इसके लिए देश भर में गुणवत्ता नियंत्रण व्यवस्था लागू की जाए।

अधिकांश किसानों को अभी भी अपनी उपज के उचित दाम नहीं मिल पाते। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में उपज तो बढ़ी है लेकिन उचित और न्यायपूर्ण विपणन व्यवस्था विकसित नहीं हुई है। किसानों को इस कारण भी नुकसान उठाना पड़ता है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में पैक करने, भंडारण करने और परिवहन की कुशल, किफायती और कारगर व्यवस्था नहीं है।

सरकार ने इन कमियों को दूर करने के लिए अनेक उपाय किए हैं। केन्द्र सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय में इस काम के लिए एक पृथक विपणन डिवीजन है। इसके अलावा मंत्रालय के अन्तर्गत एक विपणन और निरीक्षण निदेशालय है। इस निदेशालय का मुख्यालय फरीदाबाद में है और क्षेत्रीय कार्यालय देश के अन्य नगरों में हैं। इनके अलावा इसके देश भर में 54 उप कार्यालय हैं।

इस निदेशालय का मुख्य काम राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को कृषि उपज की मंडियां स्थापित करने संबंधी कानून बनाने और उसे लागू करने के बारे में तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान करना, कृषि मंडियों के प्रबंध के बारे में सलाह देना, कृषि और सम्बद्ध वस्तुओं के वर्गीकरण और मानकीकरण को बढ़ावा देना और कृषि विपणन के क्षेत्र में अनुसंधान, नियोजन और प्रशिक्षण कार्य करना है।

जयपुर स्थित कृषि विपणन केन्द्र भी इस क्षेत्र में उपयोगी कार्य कर रहा है। इस केन्द्र की स्थापना 1988 में एक स्वायत्त सोसाइटी के रूप में की गई। इसके उद्देश्य विपणन और निरीक्षण निदेशालय के उद्देश्यों की तुलना में व्यापक हैं। यह केन्द्र इस बात पर भी अनुसंधान करता है कि विपणन व्यवस्था में सरकारी और

(शेष पृष्ठ 23 पर)

ग्रामीण विपणन का विकास

डा. गिरीश मिश्र

मानव इतिहास में बाजार या मण्डी की बहुत भारी भूमिका रही है। इसके बिना सभ्यता और संस्कृति के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विनिमय के परिणामस्वरूप ही जीवन यापन का स्तर ऊंचा उठ पाया है और उपभोग में विविधता आ पायी है। कल्पना कीजिए उस अतीत की जब मनुष्य अलग-अलग कबीलों में रहता था। उस समय उसे अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए अपने आप पर ही निर्भर रहना पड़ता था। उत्पादन की उपलब्ध सुविधाओं की सीमितता, श्रम विभाजन के अभाव आदि के कारण एक तो उत्पादन का स्तर काफी नीचा था और दूसरे उत्पादन का दायरा छोटा था। उदाहरण के लिए, समुद्र से दूर अनेक इलाकों में नमक का उत्पादन कर पाना कठिन था और इसके बिना भोजन का स्वाद फीका था।

विनिमय के साथ ही उत्पादकता बढ़ी और उपभोग में विविधता आयी। लोग उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करने लगे जिनके लिए प्राकृतिक परिस्थितियां अनुकूल थीं और उन्हें दक्षता प्राप्त थी। अपने अधिशेष उत्पादन को देकर अन्य कबीलों या लोगों से वे वस्तुएं प्राप्त करने लगे जिनका उत्पादन वे या तो नहीं कर सकते थे या मुश्किल से कर पाते थे। विनिमय ने श्रम विभाजन और विशेषज्ञता को बढ़ावा दिया, जिससे उत्पादकता बढ़ी और उत्पादन बेहतर होता गया।

अपने अधिशेष उत्पादन को देकर जरूरत की अन्य वस्तुओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया को सहज बनाने के लिए 'मुद्रा' का उद्‌भव और विकास हुआ। तरह-तरह के प्रयोगों के बाद आज मुद्रा के जो रूप हैं उन तक मनुष्य आ पाया। साथ ही अनेकानेक वित्तीय संस्थानों का विकास हुआ है, भौगोलिक अन्वेषण हुआ है तथा परिवहन और संचार के क्षेत्र में प्रगति हुई है।

बाजार ने एक ओर जहां दुनिया के तमाम लोगों को जोड़ा है और एक दूसरे पर निर्भर बनाया है तथा सांस्कृतिक और वैचारिक आदान-प्रदान को बढ़ाया है, वहीं दूसरी ओर उसको हथियाने के लिए लड़ाइयां भी हुई हैं। याद रहे कि 18वीं और 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने भारत में अपने मालों के लिए बाजार बनाने की दृष्टि से ही ऐसी नीतियां अपनायीं जिनके परिणामस्वरूप भारत की दस्तकारियां नष्ट हो गईं और कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या का दबाव बढ़ा। आर्थिक इतिहासकार इसे वि-औद्योगीकरण (de-industrialisation) कहते हैं। इसी तरह के अन्य कुपरिणाम हुए।

अंग्रेजी राज के दौरान जो नई भूमि व्यवस्थाएं स्थापित की गईं उनके अन्तर्गत भावली लगान (पैदावार के रूप में लगान) की प्रथा समाप्त कर नकदी लगान की व्यवस्था को लाया गया। इसके साथ ही किसान को अपने उत्पादन के एक हिस्से के विपणन के लिए मंजबूर किया गया तथा कृषि कार्य से सम्बद्ध जोखिम में लगान प्राप्त करने वालों की कोई भागीदारी नहीं रही। फसल सूख जाए, बाढ़ में बह जाए अथवा रोग से नष्ट हो जाए, लगान तो देना ही पड़ता था।

इतना ही नहीं, आयुर्वेद जैसी भारतीय चिकित्सा पद्धतियों के विकास में शिथिलता के कारण ग्रामीण जनसंख्या अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति और दवाओं पर निर्भर होती गयी, जिन्हें प्राप्त करने के लिए नकदी जरूरी हो गयी। इतना ही नहीं पहले की तरह स्थानीय तौर पर कपड़े, फर्नीचर, कृषि के औजार, बर्तन, जूते आदि को 'यजमानी व्यवस्था' के आधार पर प्राप्त नहीं किया जा सकता था। ये सब चीजें कारखानों में निर्मित होकर शहरों से आने लगीं और इन्हें नकदी देकर ही पाया जा सकता था।

इस प्रकार जिन किसान परिवारों के सदस्य गैर कृषि क्षेत्र में कार्यरत नहीं थे, जहां से नियमित रूप से नकदी की आमद होती, उन्हें अपने उत्पादन को बढ़ाने के लिए जी-तोड़ मेहनत करनी पड़ती जिससे विपणन योग्य अधिशेष (Marketable surplus) का परिमाण बढ़ाकर अधिक से अधिक नकदी प्राप्त की जा सके। किसी भी वजह से जब फसल खराब हो जाती तब उसे लगान अदा कर जमीन बचाने के लिए महाजन के पास जाना पड़ता था। शादी-ब्याह, पर्व-त्यौहार, जन्म-मृत्यु से जुड़े संस्कारों आदि के लिए भी अधिकतर सीमान्त, छोटे एवं मझौले किसानों को महाजनों की शरण में ही जाना पड़ता था। अधिकतर महाजन गल्ले का व्यापार भी करते थे। वैसे भी महाजन-बनिया गठजोड़ काफी मजबूत था।

नतीजा यह होता था कि किसान कई प्रकार से लुटता था।

उसे अपना उत्पादन उस समय बेचना पड़ता था जब भाव सबसे कम होता था। अनेक बार खड़ी फसलों को या उनकी कटाई के तुरन्त बाद बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता था। तौल में हेराफेरी होती थी। मानक बाटों और तराजुओं का इस्तेमाल नहीं होता था। बहुतेरे किसानों को बाजार-भाव का पता भी नहीं होता था। कई किसान भण्डारण की सुविधा के अभाव के कारण भी अपनी पैदावार बेचने पर मजबूर होते थे। उदाहरण के लिए आलू और प्याज के उत्पादकों को ऐसा करना पड़ता था। उनके उत्पादन को खरीद कर व्यापारी कोल्ड स्टोरेज में रख देते थे और जब कीमतें खूब चढ़ जातीं तो बाजार में लाकर भारी मुनाफा कमाते थे।

इतना ही नहीं, किसानों को गैर कृषिजन्य वस्तुएं ऊंची कीमतों पर दी जाती थीं और उनके तौल में भी हेराफेरी होती थी। अनाप-शनाप 'कर' और 'शुल्क' भी वसूल किये जाते थे। उदाहरण के लिए माल बेचते और खरीदते समय किसानों से 'धर्मादा', 'गोशाला' आदि के नाम पर पैसे लिये जाते थे।

ग्रेडिंग के अभाव में किसानों का बढ़िया उत्पादन भी घटिया के भाव खरीद लिया जाता था। उनकी अज्ञानता और अशिक्षा का फायदा उठाया जाता था।

मंडियां गांवों से दूर थीं और वहां दलालों का दबदबा था। वहां किसानों को अनेक बार कई दिनों तक ठहरना पड़ता था जिसके लिए सुविधाएं नहीं थीं। वर्षा होने पर उनका माल खराब हो जाता था। मजबूरन उन्हें अपना माल दलालों और आढ़तियों को दे देना पड़ता था जो कम दाम देते थे।

पिछली शताब्दी के दौरान महाराष्ट्र में 'दक्कन दंगों' (Deccan Riots) के नाम से जो अशान्ति फैली उसने सरकार को चौंका दिया। उनमें ऋण और विपणन की समस्याएं तो थीं ही एक अन्य बात भी सामने आयी। यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय किसानों के उत्पादन सम्बन्धी निर्णयों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव बढ़ गया है। संयुक्त राज्य अमरीका में गृहयुद्ध के कारण उसके दक्षिणी राज्यों से ब्रिटेन की कपड़ा मिलों को कपास की आपूर्ति बन्द हो गई। परिणामस्वरूप मिलों को भारत से कपास खरीदने के लिए मजबूर होना पड़ा जिससे यहां कपास के दाम तेजी से चढ़ गये। यह सोचकर कि यह स्थिति जारी रहेगी भारतीय कपास उत्पादकों ने अपनी पैदावार बढ़ाने के साथ ही उधार पर सामान खरीदना आरम्भ कर दिया। संयुक्त राज्य अमरीका में संघीय सेनाओं की विजय के बाद शान्ति हो गई और कपास ब्रिटेन जाने लगा जिसके कारण भारतीय कपास की मांग और कीमतों में भारी गिराव आयी। किसान उधार चुकाने में असमर्थ हो गये और वणिव उनकी जमीनों को हथियाने लगे। नतीजा हुआ कि बड़े पैमाने प दक्कन के ग्रामीण क्षेत्रों में दंगे भड़क उठे।

स्थिति का अध्ययन करने के बाद सरकार ने कई कदम उठाये। कुछ लोगों के प्रयास से महाराष्ट्र में सहकारी ऋण एव विपणन आन्दोलन ने जन्म लिया।

एक बार फिर 1929-33 की महामन्दी ने किसानों पर पड़ने वाले अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव को उजागर किया। अनेक राज्यों में फसलों को बेचकर इतने पैसे किसान नहीं प्राप्त कर पाए कि लगान चुका सकें। इस कारण उनकी जमीनें नीलाम होने लगी। ग्रामीण क्षेत्रों में तनाव बढ़ा। बिहार और अवध में इसने काफी उग्र रूप ले लिया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में इसका विस्तार से ज़िक्र किया है। उस समय से ही यह मांग जोर पकड़ने लगी कि कृषि विपणन की समस्याओं की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के फैज़पुर अधिवेशन में इस समस्या पर विशेष रूप से विचार हुआ।

आजादी के बाद विपणन की समस्या की ओर काफी ध्यान दिया गया है। सरकार की कोशिश रही है कि किसानों को भण्डारण की समुचित सुविधाएं प्राप्त हों जिससे वे अपना माल तब तक सुरक्षित रख सकें जब तक बाजार भाव उनके लिए पूरी तरह अनुकूल न हों। इसके साथ ही उन्हें ऋण वगैरह मुहैया कराये जाएं जिससे कि वे अपने माल को बाजार में तुरन्त बेचने के लिए मजबूर न हों। परिवहन और संचार की सुविधाएं बढ़ें जिनसे कम भाड़े में मालों को मण्डियों तक पहुंचाया जाए और बाजार से सम्बद्ध सूचनाओं को प्राप्त किया जाए। माप तौल विभाग को सक्रिय किया गया है जिससे तोल में हेराफेरी न हो। साथ ही बिचौलियों की संख्या कम से कम की गई।

सरकार ने केन्द्रीय भण्डारण निगम की स्थापना की है जिसने अपनी भण्डारण सुविधाएं शहरों और प्रमुख मण्डियों में स्थापित कीं। साथ ही राज्य सरकारों ने भी ऐसे निगम स्थापित किये हैं। भारतीय खाद्य निगम के गोदाम भी लगभग सारे देश में बने हैं। गांवों में भण्डारण सम्बन्धी सुविधाएं देने के लिए सहकारी समितियों को सरकारी सहायता उपलब्ध करायी गई है। ग्रामीण उत्पादक थोड़ा सा शुल्क देकर माल गोदामों और कोल्ड स्टोरेजों की सुविधाएं प्राप्त कर सकते हैं। उनकी तत्कालीन

(शेष पृष्ठ 40 पर

श्रम की भट्टियों में झुलसता उन्मुक्त बचपन

✍ डा. देवनारायण महतो

एक लम्बे अरसे से ही बाल मजदूर कृषि, वाणिज्य, उद्योग-व्यापार और घरेलू कार्यों में अपना अंशदान करने की विवशता झेल रहे हैं। ये बाल श्रमिक दरिद्र परिवारों के अभावग्रस्त बच्चे हैं जो शारीरिक और मानसिक यातना के शिकार हैं तथा अत्यन्त शोषणपूर्ण परिस्थितियों में भी काम करने पर मजबूर हैं। बाल मजदूरी की ये शर्मनाक प्रथा आधुनिक और सभ्य कहे जाने वाले समाज के माथे पर एक बदनुमा दाग की तरह है।

किसी भी समाज के भावी निर्माता उसके बच्चे होते हैं। शिक्षा, मनोरंजन, स्वस्थ-जीवन और प्यार तथा सुरक्षा की भावना उनकी बुनियादी जरूरतें हैं। बाल मजदूरी की प्रथा बच्चों से उनका हंसता-खेलता, फलता-फूलता और मुस्कराता बचपन छीन लेती हैं। बाल मजदूरों के हाथों में खिलौनों तथा कलम और किताबों के स्थान पर हथौड़े और फावड़े होते हैं। चाहे जेठ की झुलसा देनेवाली गर्मी हो या सावन की घनघोर वर्षा हो या रूह को कंपा देने वाली ठंड हो, खेत-खलिहानों में खादानों में, फैक्ट्रियों में, शहर और कस्बों के होटलों में, ढाबों में, सर्वत्र नन्हें कामगारों का उन्मुक्त बचपन काम की तपती भट्ठियों में झुलसता हुआ देखा जा सकता है।

बाल-मजदूरों की संख्या :– बाल-मजदूरों की समस्या वैसे तो विश्वव्यापी है, किन्तु भारत के परिप्रेक्ष्य में यह ज्यादा चिन्ता का विषय है, क्योंकि विश्व के कुल 10 करोड़ बाल-श्रमिकों में से लगभग दो करोड़ भारत में ही हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में बाल-मजदूरों की संख्या 1 करोड़ 23 लाख बताई गई है। इसमें 33 प्रतिशत लड़कियां हैं। श्रम मंत्रालय के एक प्रतिवेदन के अनुसार भारत के प्रत्येक तीसरे परिवार में एक बाल मजदूर है और 5 से 14 वर्ष के आयु-वर्ग का हर चौथा बच्चा मजदूरी करता है। बाल मजदूरों का बहुत बड़ा भाग कृषि तथा सहायक कार्यों में लगा है। शेष माचिस, कालीन, रंग-रोगन, चूड़ी, ताला, कैंची, स्लेट, ईंट-भट्ठा, बर्तन, खनन, आतिशबाजी आदि के निर्माण तथा बूट पॉलिश करने, भीख मांगने, फेरी लगाने व घरेलू नौकरों के रूप में अपना शैशव बेचकर बुर्जगों के लिए रोटी कमाने पर विवश है। दूसरी ओर गैर-सरकारी स्वयंसेवी संगठनों का दावा है कि भारत में बाल-मजदूरों की संख्या पांच करोड़ से ज्यादा है और गरीबी, बेकारी, अशिक्षा तथा जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण इसमें बढ़ोत्तरी हो रही है।

बाल मजदूरों की समस्याएं :–बाल मजदूरों का सम्पूर्ण जीवन समस्याओं से घिरा हुआ है। दरिद्रता, अशिक्षा, गंदगी, बीमारी, शारीरिक व मानसिक शोषण, दैहिक प्रताड़ना और कुपोषण इनकी मुख्य समस्या है। दरिद्रता उक्त सभी समस्याओं की जड़ है। गरीब और लाचार मां-बाप अपने बच्चों को स्कूल भेजने की लालसा छोड़कर उनका शैशव और बचपन बेचने को मजबूर हो जाते हैं। इस प्रकार भारत में आज छह साल से नीचे के लगभग छह करोड़ बच्चे अपनी निर्धनता की वजह से अपने मां-बाप के उचित प्यार से वंचित हैं।

बच्चों से उनकी शारीरिक क्षमता के प्रतिकूल कार्य लिया जाता है। उनकी गरीबी का फायदा उठाकर नियत समय से ज्यादा काम लिया जाता है और कम मजदूरी दी जाती है। इनकी शिक्षा, मनोरंजन और आराम का ख्याल नहीं रखा जाता है।

धूल, धुआं, धूप, असह्य ताप, गंदगी, शोर, वर्षा और ठंड की प्रतिकूल परिस्थितियों में लगातार काम करने की विवशता और लाचारी से बाल-मजदूर स्थायी तौर पर अनेक प्रकार की बीमारियों से ग्रसित हो जाते हैं। बर्तन, माचिस, कांच, बीड़ी, आतिशबाजी तथा खनन उद्योग में काम करने वाले बच्चे आंख, फेफड़े तथा चर्मरोग से ग्रसित पाये जाते हैं। इस प्रकार बाल्यावस्था में ही दुर्घटना में अपंगता और अकाल-मृत्यु का शिकार होना इन बच्चों के लिए आम बात है।

बंधुआ श्रम-व्यवस्था, बाल-मजदूरों की समस्या का और भी पीड़ाजनक पहलू है, क्योंकि गरीब परिवारों के ये लाचार बच्चे शिक्षा, मनोरंजन, लाड़-प्यार और भावी विकास की सभी संभावनाओं से सर्वथा वंचित हैं।

मालिकों और बिचौलियों द्वारा पीटा जाना और बात-बात पर अपमानित किया जाना मानो इन बच्चों की नियति बन जाती है। इसके शिकार कई बच्चे कुंठाग्रस्त होकर अपराधवृति अपना लेते हैं और सम्पूर्ण समाज को हानि पहुंचाते हैं।

कारण :--बेरोजगारी, निर्धनता और अशिक्षा प्रायः सभी देशों में बाल-मजदूरी प्रथा के लिए समान रूप से उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त भारत में कृषि-श्रमिकों का भूमिहीन और सम्पत्तिहीन होना, वर्ग और जाति पर आधारित सामाजिक ढांचा, जनसंख्या में तीव्र वृद्धि तथा "जितने हाथ उतने काम" की मानसिकता बाल-मजदूरों की भयावह दशा के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी है।

बाल मजदूरी को प्रश्रय देने में उद्योगपतियों, पूंजीपतियों, सम्पन्न किसानों और बिचौलियों की भी विशेष भूमिका होती है, जो अपने स्वार्थवश बच्चों को काम पर रखना पसंद करते हैं, ताकि उनका मनमाना शोषण किया जा सके।

निवारण के उपाय :--बाल मजदूरों की समस्या के समाधान के लिए भारत में आजादी से पूर्व ही बाल श्रम बंधक अधिनियम, 1933 तथा बाल नियोजन अधिनियम, 1938 द्वारा श्रमजीवी बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा का प्रयास किया गया था। इन अधिनियमों के क्रियान्वयन पर बल न दिए जाने के कारण इसका अपेक्षित लाभ नहीं मिल सका था।

आजाद भारत में सरकार ने बाल मजदूरों के जीवन में सुखद रंग भरने और नया सवेरा लाने हेतु संविधान के अनुच्छेद 45 में 6 से 14 वर्ष के आयु-वर्ग के प्रत्येक बच्चे की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था का उपबंध किया। चाचा का मान पाने वाले पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बच्चों के प्रति अपनी करूणा को व्यक्त करते हुए कहा था--"मैं देश के हर बच्चे की आंखों में हिन्दुस्तान के भविष्य की तस्वीर देखता हूं।" उनकी इस आत्माभिव्यक्ति में बाल-सुलभ नैसर्गिक अधिकारों से वंचित करोड़ों बच्चों के उत्थान की उद्दाम इच्छा ही झलकती है।

सभी विकट दशाओं में बाल-मजदूरों को संरक्षण प्रदान करने के लिए संविधान में अनुच्छेद 15, 24, 30, 39 (3), 42 और 43 के अन्तर्गत बच्चों के भोजन, वस्त्र, आवास, कार्यदशा, कार्यनिषेध और पंजीकरण आदि को नियमित करने सम्बन्धी प्रावधान किए गए हैं। इसके अतिरिक्त बाल मजदूरी को रोकने तथा नियंत्रित करने के लिए जो कानूनी उपाय किये गये हैं उनमें बाल-श्रमिक (निषेध व नियमन) अधिनियम, 1986 प्रमुख है। इसके अलावा कारखाना अधिनियम, 1948, खादान अधिनियम, 1952, बागान श्रम अधिनियम, 1951, मोटर वाहन कानून-1958, मोटर परिवहन श्रमिक कानून, 1961, प्रशिक्षु अधिनियम, 1962, बीड़ी और सिगार श्रमिक (सेवाशर्त) अधिनियम, 1966, में बाल-मजदूरों के हितों से सम्बन्धित अनेक प्रावधानों को शामिल किया गया है। 1979 में भारत सरकार द्वारा बाल श्रमिक सैल की स्थापना की गई। यह सैल सरकारी और निजी संगठनों में कार्यरत बच्चों के कल्याण हेतु कार्य करता है तथा बाल-मजदूरों के कल्याण हेतु कार्य करने वाले स्वयंसेवी संगठनों को वित्तीय सहायता भी प्रदान करता है। इस दिशा में एम. वेंकटचलैया फाउण्डेशन, रूचिका समाज सेवक संघ, विवेकानन्द शिक्षा सोसायटी जैसे स्वयंसेवी बाल कल्याण संगठनों ने औद्योगिक, शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत बच्चों के विकास और बाल-मजदूरी के उन्मूलन में भारी योगदान किया है। दुर्भाग्य से इन उपायों और प्रयासों के बावजूद बाल-मजदूरी प्रथा के कलंक को विराम नहीं लग पा रहा है।

सुझाव :--बाल मजदूरी की समस्या भारतीय परिप्रेक्ष्य में कोई कृत्रिम समस्या नहीं है बल्कि यह भारतीय सामाजिक ढांचे, मानसिकता और असंतुलित अर्थ व्यवस्था से उपजी है, जिसकी जड़ को निर्धनता और बेराजगारी से लगातार पोषण प्राप्त हो रहा है। इसे मात्र कानूनी प्रावधानों से दूर नहीं किया जा सकता है। कानून द्वारा किसी कार्य व रोजगार में बच्चों के नियोजन को नियमित, नियंत्रित और निषेध करने मात्र से उस कानून को व्यापक सामाजिक मान्यता नहीं मिल जाती है। अब तक बने अनेक कानून भी अपेक्षित परिणाम दिलाने में असमर्थ हो रहे हैं। इसके लिए हमें व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना होगा और इस समस्या को जड़ से नष्ट करना होगा। लोगों की आय बढ़ाने के लिए कृषि पर आधारित लघु उद्योगों का जाल गांव-गांव में बिछाना होगा। बुनियादी शिक्षा की नयी तकनीक विकसित करके शिक्षा को रोजी-रोटी से प्रत्यक्षतः जोड़ना होगा।

द्वारा श्री वासुदेव महतो,
वनस्पति विज्ञान विभाग,
साइन्स कालेज कैम्पन,
पटना-800005

भारतीय अर्थ व्यवस्था के बढ़ते चरण

डा. सूरज सिंह

आज विश्व विकसित और विकासशील दो गुटों में बंटा हुआ है। इनमें आर्थिक विकास के उच्चतम शिखर को पाने हेतु हमेशा प्रतिस्पर्धा रहती है। भारतीय अर्थ व्यवस्था का स्वरूप विकासशील है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हमारे योजनाकारों के समक्ष अर्थ व्यवस्था को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करने का लक्ष्य था। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत की गई। सात योजनाएं पूरी हो चुकी हैं तथा आठवीं पंचवर्षीय योजना में विकास कार्य चल रहा है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश की अर्थ व्यवस्था उस रुग्ण मानव की भांति थी जिसके प्रत्येक अंग में क्षय रोग लगा चुका था। घी-दूध की नदियों वाले देश में ब्रिटिश शासन काल में अकाल, गरीबी, भुखमरी और बेरोजगारी का साम्राज्य व्याप्त था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात योजनाबद्ध विकास से आज भारतीय अर्थ व्यवस्था बहुत से क्षेत्रों में आगे बढ़ चुकी है।

नियोजन काल में भारतीय अर्थ व्यवस्था

अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का अवलोकन करने पर आज भारतीय अर्थ व्यवस्था का परिदृश्य स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय के परिदृश्य से बिल्कुल भिन्न प्रतीत होता है। प्रत्येक क्षेत्र में विकास देखने को मिलता है। शिक्षा को ही लें, स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय साक्षरता स्तर जो मात्र 17 प्रतिशत था वह आज बढ़कर 53 प्रतिशत हो चुका है। देश में तकनीकी शिक्षा का तेजी से विकास हो रहा है। भारत की गणना उन देशों में की जा सकती है जहां विश्व के सर्वाधिक डाक्टर व इंजीनियर उपलब्ध हैं। वैज्ञानिक व तकनीकी क्षमताओं तथा संभावनाओं के कारण भारत का स्थान विश्व के पहले दस राष्ट्रों में है।

हमारी कृषि अर्थ-व्यवस्था आज मजबूत आधार ले चुकी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय खाद्यान्न उत्पादन जहां 5 करोड़ टन वार्षिक था आज 18 करोड़ टन वार्षिक को पार कर चुका है। सत्तर के दशक में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने हरित क्रांति का नारा देश को स्वावलम्बी बनाने के उद्देश्य से ही दिया था ताकि भविष्य में भारत को खाद्यानों के लिए किसी देश के सामने हाथ नहीं फैलाने पड़ें। यह गर्व की बात है कि आज हम खाद्यान्नों में आत्म निर्भर हो चुके हैं।

देश में सुई से लेकर हवाई जहाज तक के पुर्जे बनाए और विकसित किए जा रहे हैं। स्वतंत्रता से पहले भारतीय कच्चे माल को विदेशों में भेजा जाता था और वहां से तैयार माल भारत में लाया जाता था। इस नीति के फलस्वरूप तत्कालीन भारतीय अर्थ व्यवस्था डांवाडोल हो चुकी थी। आज देश में उत्पादित कच्चे माल का उपयोग देश में ही किया जा रहा है तथा उससे तैयार माल विदेशों को निर्यात किया जा रहा है। यही कारण है कि आज हमारी अर्थ व्यवस्था अपना सुदृढ़ आधार प्राप्त कर रही है। नियोजन काल में औद्योगिक उत्पादन तीन गुना से भी अधिक बढ़ चुका है। प्रगति की दौड़ में आज भारत इंजीनियरिंग, इलेक्ट्रानिक सामान, रसायनों, स्कूटर, साईकिल व कपास के सबसे बड़े उत्पादक देश के रूप में उभर कर आया है। चीनी, चाय, काफी, मसाले, लौह अयस्क तथा खनिज उत्पादन में भारत की गणना विश्व के छः बड़े उत्पादक देशों में की जाती है। देश 12 प्रतिशत से 14 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करने में सक्षम हो चुका है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के साथ ही सामाजिक कल्याण के लक्ष्य को प्राथमिकता दी गई। राष्ट्रीयकृत बैंकों ने अपनी नव-स्थापित शाखाओं का बड़ा भाग ग्रामीण व पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित किया है तथा वहीं ऋण आदि की सुविधा प्रदान करने में छोटे कामगारों, लघु व सीमांत किसानों तथा आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों को प्राथमिकता दी है।

परिवहन के क्षेत्र में भी अर्थ-व्यवस्था ने सराहनीय प्रगति की है। देश जल, थल व वायु परिवहन विकास के नए आयाम प्राप्त कर रहा है। देश के बड़े-बड़े नगरों तथा राजधानियों को विभिन्न परिवहन माध्यमों से जोड़ा जा चुका है। परिवहन व्यवस्था के सुचारु रूप से संचालन के कारण ही प्रतिवर्ष आने वाले पर्यटकों की संख्या में वृद्धि हो रही है। आठवीं योजना के अन्त तक सम्पूर्ण देश में सम्पूर्ण रेल लाईन को ब्राडगेज में बदल देने का लक्ष्य रखा गया है। भारतीय रेलवे का विश्व में द्वितीय और एशिया में प्रथम स्थान है और इसमें सबसे अधिक लोगों को रोजगार मिला हुआ है।

अन्तरिक्ष विज्ञान में भारत के बढ़ते कदम विश्व का ध्यान अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। स्वदेश में ही निर्मित व विकसित अग्नि और पृथ्वी जैसे प्रक्षेपास्त्रों का प्रक्षेपण

सफलतापूर्वक कर भारतीय अर्थ-व्यवस्था में एक नए युग की शुरुआत हुई है। नाभिकीय विकास कार्यक्रम में भारत विश्व के पहले छः देशों में अपना स्थान बना चुका है।

नवीन आर्थिक नीति : एक अभिनव प्रयोग

नियोजन काल में निसंदेह भारतीय अर्थ-व्यवस्था में चहुंमुखी विकास देखने को मिला है। यद्यपि प्रथम औद्योगिक नीति 1948 के प्रस्ताव में ही मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की परिकल्पना की गई, किन्तु अस्सी के दशक में सार्वजनिक क्षेत्रों के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया गया। इस दौरान सार्वजनिक क्षेत्र में भारी मात्रा में पूंजी का विनियोग किया गया। नब्बे का दशक भारतीय अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तनकारी रहा, जिसमें वृहद् उद्योगों पर से ध्यान हटाकर लघु और कुटीर उद्योगों के विकास पर अधिक बल दिया गया। 1980 की औद्योगिक नीति में लघु क्षेत्र को विशिष्ट प्रोत्साहन देने की बात कही गई। इसी के अंतर्गत अर्थ-व्यवस्था में मंदी का पूर्वाभास होने लगा और 1990 के दशक में आर्थिक व्यवस्था चरमराने लगी। इससे छुटकारा पाने के लिए नवीन आर्थिक नीति को अपनाया गया।

नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत उद्योग, व्यापार, विदेशी पूंजीनिवेश आदि क्षेत्रों में उदारीकरण की व्यवस्था पर बल दिया गया है। औद्योगिक क्षेत्र को मजबूत आधार प्रदान करने हेतु लाइसेन्स व्यवस्था को उदार बनाया गया है। कुछेक उद्योगों को छोड़ शेष समस्त उद्योग लाइसेन्स मुक्त कर दिए गए हैं। विदेशी निवेश सीमा को 51 प्रतिशत तक बढ़ा दिया गया है। इसी प्रकार एम. आर. टी. पी. अधिनियम और फेरा कानूनों में परिवर्तन किया गया। निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए जुलाई 91 में भारतीय रुपये का दो बार अवमूल्यन किया गया तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए रुपये को पूर्ण परिवर्तनशील कर दिया गया है।

आर्थिक उदारीकरण तथा नवीन आर्थिक सुधारों की नीतियों में भारतीय उद्योगों को प्रतियोगी बनाने की भावना पर विशेष जोर दिया गया है। इससे भारतीय उद्योगों को सरकारी संरक्षण के बिना विस्तार करने का मौका मिलेगा। उद्योगों के इतिहास का पुनरावलोकन करें तो हम पाते हैं कि विगत 43 वर्षों से भारतीय उद्योगों को संरक्षण पर जीने की आदत सी हो गई है। संरक्षणवादी नीतियों का लाभ उठाकर भारतीय उद्योगों ने न तो गुणवत्ता में सुधार किया और न ही लागत कम करने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप विश्व-बाजार में भारतीय उत्पाद पिछड़ गए। अतः नवीन आर्थिक नीति में उद्योगों को प्रतियोगी बनाने की जो भावना रखी गई है उससे भारतीय उद्योगों में निर्मित माल की गुणवत्ता व कीमत दोनों में सुधार होगा और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारत की अलग पहचान बन सकेगी।

अर्थ व्यवस्था के विकास में बाधक तत्व

यद्यपि नियोजन काल में भारतीय अर्थ-व्यवस्था ने आशातीत उपलब्धि अर्जित की है किन्तु अर्थ-व्यवस्था के समक्ष विभिन्न चुनौतियां मुंह बाये खड़ी हैं। देश की बढ़ती जनसंख्या, बेकारी, गरीबी, आर्थिक व सामाजिक असमानता, विदेश व्यापार में असंतुलन आदि कुछ ऐसी समस्याएं हैं जो विकास की गति को धीमा कर रही हैं। आज भी निर्धनता की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों की संख्या कुल जनसंख्या के 35 प्रतिशत से अधिक है। रोजगार कार्यालयों में बेरोजगारों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। रेलवे की बुकिंग खिड़की पर और बस स्टाप पर लम्बी-लम्बी कतारें, पानी के लिए लड़ते लोग, विद्यालय-महाविद्यालयों में प्रवेश के लिए लम्बी-लम्बी कतारें आदि को देखने पर लगता है कि देश में विकास के नाम पर जो कुछ किया गया है वह पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। नियोजन काल में 60 लाख रोजगार के अवसर जुटाने के पश्चात् भी देश में आज बेरोजगारों की संख्या 35 लाख के आस-पास है। विडम्बना है कि देश में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़ती जा रही, है जो प्रतिभा पलायन को जन्म दे रही है। इसी प्रकार सामाजिक न्याय, सामाजिक समता आदि आदर्श पूर्णतः प्राप्त नहीं किए जा सके हैं।

कुछ सुझाव

यह सही है कि भारतीय अर्थ व्यवस्था में आज कई रोग उत्पन्न हो गए हैं किन्तु यह भी सही है कि प्रत्येक आर्थिक रोग की औषधि उपलब्ध है। अर्थ व्यवस्था को और अधिक गति देने हेतु आवश्यक है कि :

- अर्थ व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के संतुलित विकास का प्रयत्न किया जाए।
- जिन लोगों के लिए विकास योजनाएं बनाई जाती हैं उन्हें उन्हीं की क्षेत्रीय भाषा में योजना के लाभों से अवगत कराया जाए।
- शिक्षा में गुणात्मक पहलू पर अधिक ध्यान दिया जाए।
- ग्रामीण व शहरी अर्थ व्यवस्था को एक दूसरे का प्रतिस्पर्धी न मानकर पूरक माना जाए।
- बढ़ती फिजूलखर्ची व उपभोक्ता संस्कृति पर पर्याप्त अंकुश लगाकर धन का विनियोजन उत्पादक कार्यों में किया जाए।

- दूसरों से ऋण लेकर घी पीना कोई बुद्धिमानी नहीं, इस सूत्र को ध्यान में रख स्वयं के संसाधनों का विकास करना चाहिए।
- बेरोजगारी से छुटकारा पाने हेतु लघु और कुटीर उद्योगों का महत्व समझ कर उन्हें विकसित किया जाए। साथ ही स्वरोजगार कार्यक्रम विकसित करने पर जोर दिया जाए।
- विकास कार्यक्रमों से देश की जनता को प्रत्यक्ष रूप से जोड़कर भागीदार बनाया जाए।

8 बी, 9 प्रताप नगर,
टोंक फाटक, जयपुर,
(राजस्थान) 320215

(पृष्ठ 16 का शेष)

कृषि विपणन की...

सार्वजनिक निवेश से लागत संबंधी क्या लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। यह केन्द्र नीति निर्धारकों को इस विषय की विशेष सलाह सेवा प्रदान करने का भी कार्य करता है।

राज्यों में कृषि विपणन का कार्य कृषि विभाग के अन्तर्गत आता है। कुछ राज्यों ने पृथक विपणन निदेशालयों की स्थापना की है। अधिकांश राज्यों में कृषि विपणन बोर्डों की स्थापना की जा चुकी है। ये बोर्ड सभी विनियमित (नियंत्रित) मंडियों का विकास और प्रबंध करते हैं। प्रत्येक कृषि मंडी का प्रबंध एक 'मंडी समिति' करती है। मंडी नियंत्रण अधिनियम के अन्तर्गत समिति मंडी क्षेत्र में कृषि उपज की बिक्री और खरीद को नियंत्रित करती है। इससे बिचौलियों की भूमिका समाप्त हो जाती है और किसानों को अनेक किस्म के शुल्कों का भुगतान करने से मुक्ति मिल जाती है।

मंडी में किसानों को अपनी उपज के बेहतर दाम मिलते हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश अभी यह सुविधा थोड़े से किसानों को उपलब्ध है। इस समय देश में लगभग 34,000 मंडियां हैं लेकिन इनमें से केवल 6,640 अधिनियम के अन्तर्गत आती हैं। शेष मंडियां पुरानी परम्परागत शैली में काम करती हैं। इनमें व्यापारियों और बिचौलियों का वर्चस्व है जो किसानों से अनेक तरह के शुल्क वसूल करके उनका शोषण करते हैं।

अभी कुछ राज्यों में मंडी विनियमन अधिनियम पारित नहीं हुआ है। केन्द्र सरकार इन राज्यों पर शीघ्रातिशीघ्र मंडी अधिनियम पारित कराने के लिए दबाव डाल रही है। राज्यों और केन्द्र शासित क्षेत्रों से कहा गया है कि आठवीं योजना के दौरान 15,000 और मंडियों को मंडी नियंत्रण अधिनियम के अन्तर्गत ले आएं।

केन्द्रीय सहायता

ग्रामीण विकास मंत्रालय 1972-73 से राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को कृषि उपज मंडियां विकसित करने के लिए सहायता दे रहा है। 31 मार्च 1993 तक राज्यों और केन्द्र शासित क्षेत्रों को 3,658 मंडियां विकसित करने के लिए 93.30 करोड़ रुपये दिए जा चुके थे। इन मंडियों में से 855 सहायक और 2803 प्रारम्भिक मंडियां थीं। अब यह योजना राष्ट्रीय विकास परिषद के निर्णय के अनुसार राज्यों को अंतरित की जा चुकी है।

कृषि उपज की कारगर विपणन व्यवस्था विकसित करने के लिए किसानों, व्यापारियों और उपभोक्ताओं को समय पर सूचना उपलब्ध कराना जरूरी है। अतः सरकार ने इस वर्ष (94-95) से ग्रामीण मंडियों को विभिन्न कृषि उपज के भावों की सूचना उपलब्ध कराने की एक योजना स्वीकार की है। इस योजना का उद्देश्य कम्प्यूटर के जरिए 583 प्रमुख मंडियों को आपस में जोड़ना है। इस तरह प्रतिदिन विभिन्न कृषि उपजों के दाम मंडियों में और सरकार के पास पहुंचेंगे। दामों में जबरदस्त घटा-बढ़ी होने पर सरकार किसानों और उपभोक्ताओं के हित में मंडी के काम काज में हस्तक्षेप कर सकेगी। आठवीं योजना में इस सूचना व्यवस्था को स्थापित करने पर छह करोड़ रुपये खर्च किए जाएंगे। इसी के साथ मंडियों में आने वाले मोटे अनाज के दामों पर नजर रखने की भी एक योजना स्वीकार की गई है। इसका उद्देश्य मोटा अनाज पैदा करने वाले किसानों को उनकी उपज के मुनासिब दाम दिलाना है।

22, मैत्री अपार्टमेंट्स,
ए/3 पश्चिम विहार,
नई दिल्ली

कहानी

कर्मयोगी

डा. शीतांशु भारद्वाज

धीरज को मैनेजर कुलकर्णी ने अपने पास बुलाया था। मशीन को धीमी करके वह उसी ओर चल दिया। अंदर चल रही बातचीत को सुनकर वह बाहर ही ठिठक गया। उसके कान अंदर की ओर लग गए।

"देख फकीरे!" मैनेजर फकीरा को समझा रहे थे, "अगर तूने ऐसा कर लिया तो समझ ले दो ही महीने में तेरी सारी गरीबी छूमंतर हो जाएगी।"

"लेकिन साब. . . ." फकीरा हकलाने लगा, "ये तो मालिक के साथ धोखाधड़ी होगी।"

"युधिष्ठिर नहीं बना करते, फकीरे।" मैनेजर का झुंझलाहट भरा स्वर था, "व्यापार में ये सब चलता ही रहता है। सभी तो मिलावट किया करते हैं।"

धीरज उल्टे पांव वहां से अपनी मशीन की ओर लौट आया। मैनेजर और फकीरा में हुई उस बातचीत ने उसकी आत्मा को बुरी तरह से झकझोर कर रख दिया। तो क्या मैनेजर कुलकर्णी मालिक की आंखों में सरेआम धूल झोंका करता है? ऐसा ही कुछ सोचकर वह फिर से मशीन पर काम करने लगा। मशीन के मुंह से दवाइयों के लाल-पीले कैप्सूल उछल-उछल कर एक ओर पड़ी ट्रे में गिरते जा रहे थे।

ओखला स्थित कपूर साहब की उस लेबोरेटरी में अनेक जीवन रक्षक दवाइयों का निर्माण होता है। साठ-सत्तर श्रमिकों के काम की देख-रेख अकेले कुलकर्णी ही किया करते हैं। कपूर साहब तो उस ओर कभी-कभार ही आया करते हैं। धीरज पर उनकी बहुत कृपा रही है।

दो वर्ष पहले धीरज ओखला की ही किसी फैक्ट्री में तालाबंदी का शिकार हुआ था।

उस दिन निजामुद्दीन के क्षेत्रीय कार्यालय के बाहर खड़ा-खड़ा वह यों ही मूंगफलियां ठूंग रहा था। तभी सामने से दौड़ती हुई कार से सड़क के मोड़ पर एक फाइल गिर पड़ी थी। धीरज उसी ओर भागा था। फाइल उठाकर उसने जोर-जोर से आवाजें दी थीं, साहब! साहब! वह उसी दिशा में दौड़ने लगा था। तेजी से भागने के कारण उसकी सांस फूल आई थी।

"क्या काम करते हो, बरखुरदार?" फाइल लेते हुए कपूर साहब ने उससे पूछा था।

"बस साहब ! इन दिनों तो दिल्ली की सड़कें नापा करता हूं।" वह सिर खुजलाने लगा था।

"आओ, गाड़ी में बैठो।" उन्होंने उसके लिए कार का दरवाजा खोल दिया था।

धीरज कार में बैठ गया था। गाड़ी ओखला की ओर दौड़ने लगी थी। कपूर साहब ने उसे एक श्रमिक के रूप में रख लिया था। पिछले महीने श्रमिकों की एक मीटिंग हुई थी। उसमें एक कामरेड बाहर से आए हुए थे। वे श्रमिकों का बोनस बढ़ाने की बातचीत कर रहे थे। धीरज भी कुछ कहना चाहता था।

"बोलो भाई।" कामरेड ने उसके मनोभाव भांप लिए थे।

"बोनस का मामला आपसी बातचीत के द्वारा ही तय कीजिएगा।" उसने उन्हें सुझाव दिया था, "हड़ताल और घेराव से अपुन लोगों की ही हालत खराब होती है।"

"ठीक कहते हो, कामरेड।" श्रमिक नेता मुस्करा दिए थे, "हड़ताल तो हम लोगों का आखिरी हथियार हुआ करता है।"

"इससे तालेबंदी की नौबत आने लगती है। और . . ."

"जानते हैं! अच्छी तरह से जानते हैं!" श्रमिक नेता ने सिर हिलाकर सहमति जतलाई थी।

"खाली मशीन धरड़. . .धरड. . .करने लगी थी। धीरज ने उसके मुंह में दवाइयों के पाउडर का थैला उंड़ेल दिया। लाल-पीले कैप्सूल फिर से उछल-कूद करने लगे।

"अरे!" फकीरा ने धीरज के पास जाकर उसके कंधे पर हाथ रख दिया, "तुझे मैनेजर साब याद कर रहे थे!"

धीरज मुस्करा दिया।

"क्यों?" फकीरा ने उस मुस्कान का रहस्य जानना चाहा।

"वे मुझे भी भ्रष्ट करना चाहते होंगे।" धीरज ने कहा।

"तो तू हमारी बातचीत सुनता रहा?" फकीरा की आंखों में विस्मय भर आया।

"हां" धीरज ने गहरी सांस खींची, "सुन कर मैं वहां से उल्टे पांव चला आया था।"

"तेरे-मेरे ना-नू करने से क्या होता है, धीरे?" फकीरा उसे समझाने लगा, "हमारे यहां मिलावट का धन्धा तो कई वर्ष से यों ही चला आ रहा है। घीसू, मातबर, सांगा—सभी तो ये काम किया करते हैं।"

"ये तो बहुत बड़ा जुल्म ढाया जा रहा है।" धीरज के माथे पर चिंता की सलवटें घिर आईं, "ये लोग तो मरीजों के जीवन से खिलवाड़ करते आ रहे हैं।"

"ज्यादा न सोचा कर, मेरे यार!" फकीरा ने धीरज के हाथ अपने हाथों में ले लिए, "मजदूरों को ज्यादा नहीं सोचना चाहिए। अपुन लोगों को तो मजदूरी करने से मतलब है।"

"नहीं फकीरे!" धीरज ने साथी की उस धारणा का खंडन कर दिया, "यहां मैं तुझसे सहमत नहीं हूं। मजदूर के साथ-साथ हम लोग नागरिक भी तो हैं।"

"तो फिर सोच-सोच कर अपनी देह दुखाता रह!" फकीरा उस पर झुंझला उठा। उधर से वह अपनी मशीन की ओर चल दिया।

शाम को लेबोरेटरी में छुट्टी हो आई। श्रमिक घर जाने लगे। धीरज ने भी अपनी खटारा साइकिल ली और बाहर चल दिया। आगे के चौराहे पर वह रुक गया। उसकी नागरिक चेतना उसके मन-प्राणों में उथल-पुथल मचाने लगी। वह निश्चय नहीं कर पा रहा था किधर जाए? अगले ही क्षण वह मेन रोड की दिशा में हो लिया। साइकिल पर पैडल मारता हुआ वह डिफेंस कालोनी की ओर चल दिया। वह मालिक को सब कुछ बतला देना चाहता था।

डिफेंस कालोनी आ गई थी। कपूर साहब की कोठी पर आकर उसने साइकिल पर ब्रेक लगाया। साइकिल उसने एक ओर बाहर खड़ी कर ली। उस समय कपूर साहब हाथ में पाइप लिए हुए लान की फुलवाड़ी की सिंचाई कर रहे थे। उस पर नजर पड़ते ही वह मुस्करा दिए, "आओ धीरज, अंदर चले आओ।

"आया मालिक!" धीरज वहीं उन्हीं के पास जा खड़ा हुआ। वह सिर खुजलाने लगा, "मैं आपसे एक जरूरी बात करने आया हूं।"

"अरे भई, बैठ तो।" कपूर साहब मुस्करा दिए।

"नहीं मालिक!" वह उसी प्रकार खड़ा रहा।

"ये क्या मालिक-मालिक की रट लगा रखी है!" कपूर साहब कुर्सी से उठ खड़े हुए। उन्होंने उसका हाथ खींच कर उसे बेंत की कुर्सी पर बिठला दिया। उन्होंने पूछा, "चाय तो पिएगा न?"

"नहीं साहब।" धीरज ने हाथ जोड़कर मनाही कर दी।

"शीला!" कपूर साहब ने वहीं से पत्नी को आवाज दी, "दो प्याली चाय भिजवाना।"

धीरज संकोच के मारे सिकुड़ता ही जा रहा था। आज तक वह जितनी भी नौकरियां करता रहा, कपूर साहब जैसा मालिक उसने पहले कभी नहीं देखा। उसे वे मसीहा ही लगने लगे। मैनेजर हो या मजदूर, सभी के साथ वे पारिवारिक सदस्यों जैसा व्यवहार किया करते हैं।

"वो साहब. . . .।" धीरज बीच में ही अटक गया।

"अच्छा, पहले यह बता कि तेरी बिटिया की तबियत कैसी है?" कपूर साहब ने उसकी बात बीच में ही काट दी।

धीरज ठगा-सा रह गया। मालिक को उसकी बिटिया के बारे में कैसे मालूम? तभी उसे मालूम हो आया कि पिछले महीने शरबती बेटी की बीमारी पर उसने जो सप्ताह भर की छुट्टियां ली थीं, हो सकता है, वह अर्जी उन तक भी पहुंची हो। अगले ही क्षण उसने दोनों हाथ जोड़ दिए, "पहले से ठीक है, साहब!"

कपूर साहब की पत्नी शीला स्वयं ही दो प्याली चाय ले आई। धीरज ने उठकर मालकिन का अभिवादन किया।

"अपनी लेबोरेटरी का कामगार धीरज है।" कपूर साहब ने पत्नी को उससे परिचित करवाया।

मुस्कराकर मालकिन अंदर चल दीं। कपूर साहब ने चाय की चुस्की लेकर पूछा, "हां तो धीरज, अब बता, कैसे आना हुआ?"

धीरज ने मालिक को लेबोरेटरी में चल रही मिलावट और धांधली की सारी बातें बतला दीं। कपूर साहब के हाथों जैसे तोते उड़ गए। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ की स्थिति में हो आए। बड़ी कठिनाई से उनके मुंह से निकला हूं!

"लोगों की जान बचाइए, मालिक!" धीरज ने गुहार की।

"ठीक है, धीरज!" कपूर साहब ने गहरा उच्छवास भरा, "मैं इसकी पूरी छानबीन करवाऊंगा।"

कपूर साहब का अभिवादन कर धीरज ने साइकिल उठाई और सीधे ही अपने घर चल दिया। सारे रास्ते वह इसी मामले पर सोचता रहा। कहीं उसने श्रमिकों के प्रति गद्दारी तो नहीं की? उसके कानों में फकीरा के शब्द गूंजने लगे, "मजदूरों को ज्यादा नहीं सोचना चाहिए। अपुन लोगों को तो मजदूरी करने से मतलब है!"

धीरज मानसिक रूप से परेशान हो आया था। पत्नी ने कारण पूछा तो उसने उसे सारी बातें बतला दीं। पत्नी फिस्स-से हंस दी, "शरबती के बापू, तुमने जो कुछ किया, ठीक ही किया है। अब अपने किये पर पछतावा कैसा?"

"यानि कि नमक हलाली करके मैंने अच्छा ही किया है।" धीरज ने बीड़ी सुलगा ली।

"इसमें नमक हलाली की ऐसी क्या बात है?" पत्नी का हाथ उसके कंधे पर आ लगा, तुमने तो अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।

कपूर साहब का मैनेजर कुलकर्णी पर अंधा विश्वास था। उससे इस प्रकार की धांधली की तो वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। अगले ही दिन उन्होंने अपनी लेबोरेटरी में निर्मित कैप्सूलों और इंजेक्शनों का परीक्षण एक विश्वसनीय प्रयोगशाला से करवाया। जांच-पड़ताल पर पता चला कि उसमें पच्चीस प्रतिशत मिलावट है। ऐसे में उन्हें इर्द-गिर्द की दुनिया तेजी से घूमती प्रतीत होने लगी। इससे उन्हें गहरा धक्का पहुंचा।

कपूर साहब ने उसी दिन कुलकर्णी को उसकी सेवाओं से अलग कर दिया। काम की देखभाल वे खुद ही करने लगे।। लेबोरेटरी पहले की भांति फिर से शुद्ध उत्पादन करने लगी।

एक दिन कपूर साहब ने धीरज को अपनी केबिन में बुलवा लिया।

"जी मालिक!" धीरज एक ओर हाथ बांधे हुए खड़ा हो गया।

"हम तुम्हारें आभारी हैं, धीरज!" कपूर साहब उसका आभार प्रकट करने लगे, "यदि तुम न होते तो आज हम तबाह हो गए होते। हमारी सारी साख मिट्टी में मिल गई होती।"

"ये तो मेरा कर्त्तव्य था, मालिक!" धीरज ने निरपेक्ष भाव से कहा।

आज से तुम हमारी लेबोरेटरी में सुपरवाइजर हो गए हो। कपूर साहब ने उसी समय उसकी पदोन्नति कर दी।

"ओह मालिक!" धीरज उनके पांवों पर गिरने को हुआ।

"अरे! कपूर साहब ने उसे ऊपर उठा लिया। वे उसकी पीठ थपथपाने लगे, "यह तरक्की मैंने नहीं दी है। यह तो तुम्हें तुम्हारी योग्यता के आधार पर ही मिली है।"

धीरे-धीरे धीरज के रहन-सहन में भी बदलाव आने लगा। अब वह गरीबी की रेखा से कुछ ऊपर उठने लगा। इस बीच उसकी बिटिया शरबती भी एकदम स्वस्थ हो आई। वह और भी निष्ठा तथा लगन के साथ अपना काम करने लगा।

138, विद्या विहार,
पिलानी, (राजस्थान),
पिन 333031

राजस्थान में कृषि विपणन

आर. के. मीना

कृषि विपणन का विकास मानव-सभ्यता के साथ जुड़ा हुआ है। पूर्व में कृषक केवल अपनी आवश्यकतानुसार कृषि जिन्सों का उत्पादन करता था। तत्पश्चात् कृषि का विकास होने के फलस्वरूप आवश्यकता पूर्ति के बाद शेष उपज को कृषक बाजार में लाने लगा। लेकिन इस व्यवस्था के अन्तर्गत कृषक शोषण का शिकार होता था क्योंकि कृषि विपणन की कोई नियमित व्यवस्था नहीं थी। कृषकों को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से देश में नियमित मंडियों के विकास के लिए सरकार ने समय-समय पर प्रभावी कदम उठाए। इस क्रम में राजस्थान में 1961 में राजस्थान राज्य कृषि विपणन अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत प्रथम नियमित मंडी की स्थापना हाड़ोती अंचल के बारा कस्बे में हुई। इसके बाद राज्य में नियमित मंडियों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती गई और अब 134 नियमित मंडियां और 250 उप मंडियां कार्यरत हैं जिनमें कृषि जिन्सों की बिक्री नियमित रूप से की जाती है।

कृषि उपज का विक्रय

राजस्थान राज्य कृषि उपज विपणन अधिनियम 1961 के अनुसार मंडियों में माल खुली बिक्री से ही बेचा जा सकता है और कृषक को उसकी जिंस का तत्काल भुगतान भी किया जाता है।

मंडी शुल्क

मंडी नियमन व्यवस्था को प्रभावी ढंग से लागू करने और मंडी शुल्क अवंचन को रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाने के परिणाम स्वरूप राज्य की कृषि उपज मण्डी समितियों को मंडी शुल्क से प्राप्त होने वाली आय में निरन्तर वृद्धि हुई है।

मण्डी प्रांगणों में कम्प्यूटर

राज्य की विशिष्ट तथा "अ" श्रेणी की सोलह कृषि उपज मण्डी समितियों में कम्प्यूटर की स्थापना की गई है। कम्प्यूटर के उपयोग से मंडी शुल्क में वृद्धि होगी। मंडियों में कम्प्यूटराइजेशन कार्य को गति देने हेतु मंडी समिति ने कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये हैं।

वर्गीकरण

राज्य के कृषक को मंडियों में बाजार भाव की जानकारी देने के लिए प्रतिदिन आकाशवाणी और समाचार पत्रों के माध्यम से बाजार भावों का प्रसारण किया जाता है। मंडियों में सूचना पट्टों पर भी बाजार भाव प्रदर्शित किया जाता है। राज्य की 36 महत्वपूर्ण मंडियों में व्यावसायिक वर्गीकरण केन्द्रों के माध्यम से जिंसों के वर्गीकरण का कार्य भी किया जा रहा है।

कृषक विश्राम गृह

मंडी प्रांगण में कृषकों को किसी प्रकार की असुविधा नहीं हो इस दृष्टिकोण से उनके ठहरने के लिए विश्राम गृहों में मवेशियों के लिए पीने के पानी की खेलियां, पशु छायागृह तथा प्याऊ आदि की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। कृषि उत्पादन के काम में आने वाली वस्तुओं, खाद, बीज, कीटनाशक और कृषि उपकरण बेचने के लिए दुकानों की व्यवस्था भी मंडी प्रांगण में ही की गई है, जिससे कृषक को अपनी आवश्यकता की वस्तुओं की खरीद के लिये इधर-उधर न भटकना पड़े।

एगमार्क प्रयोगशालायें

क्रेताओं व विक्रेताओं के साथ-साथ उपभोक्ताओं को भी संरक्षण देने के लिए विभाग द्वारा स्थापित एगमार्क प्रयोगशालाओं में मसालों, घी, खाद्य तेल आदि का परीक्षण कर एगमार्क लेबल लगाया जाता है, जो शुद्धता एवं विश्वसनीयता का प्रतीक है। इस समय राज्य में 16 एगमार्क प्रयोगशालाएं कार्यरत हैं।

गांव गोद लेना

गोवा में नेशनल कौंसिल ऑफ स्टेट एग्रीकल्चरल मार्केटिंग बोर्ड्स की बैठक में राजस्थान के कृषि राज्य मंत्री ने प्रस्ताव रखा था कि देश की करीब सात हजार मंडी समितियां एक-एक गांव गोद लेकर उनका सर्वांगीण विकास करें। यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

गांव का चयन

कृषि उपज मंडी क्षेत्र में अनुसूचित जाति के अधिकतम प्रतिशत वाले गांव और जनजाति क्षेत्र में अनुसूचित जनजाति के अधिकतम प्रतिशत वाले गांव का चयन इस योजना के अंतर्गत प्राथमिकता के आधार पर किया जायेगा, जिनकी वर्ष 1981 में जनसंख्या 1000 से अधिक हो तथा जिनमें सड़क व अन्य सुविधाओं का अभाव हो। यह चयन तीन वर्ष के लिए मान्य रहेगा।

विनियोग

मण्डी समिति अगले तीन वर्षों में चयनित गांव के लिए प्रतिवर्ष पचास हजार रुपये की राशि व्यय करेगी। यह राशि सड़क निर्माण हेतु स्वीकृत राशि के अतिरिक्त होगी। मण्डी समिति के पास पैसा हो तो वह स्वविवेक से स्थानीय आवश्यकता को देखते हुए राशि भी खर्च कर सकेगी। राज्य में कई मंडियां ऐसी भी हैं, जिनके पास पचास हजार रुपये की राशि सरप्लस नहीं होगी। ऐसी मंडियों को धनराशि राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड द्वारा उपलब्ध करवाई जायेगी।

विकास कार्य

स्थानीय विकास कार्यों का चयन, स्थानीय ग्राम सभा की बैठक बुलाकर किया जायेगा। जो प्राथमिकताएं गांव वाले तय करेंगे वहीं प्राथमिकताएं राज्य सरकार द्वारा तय की जायेंगी। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत केवल सार्वजनिक हितों के कार्य ही किए जायेंगे। मोटे तौर पर योजना में निम्न कार्य किए जा सकेंगे :

1. सड़क निर्माण
2. चिकित्सालय/औषधालय भवन निर्माण
3. शिक्षा भवन निर्माण
4. पेयजल व्यवस्था
5. सम्पूर्ण साक्षरता
6. गन्दे पानी के निकास हेतु नालियों का निर्माण
7. गांव में सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण
8. पुलियों/खुरंजों का निर्माण
9. पशु पेयजल हेतु तालाब का निर्माण
10. ओरण सुधार
11. चरागाह विकास

इन कार्यों के लिए अन्य विभागों का सहयोग भी प्राप्त किया जायेगा।

संचालन समिति

गांवों के चयन हेतु जो प्रक्रिया दर्शाई गई है उसमें विवाद होने पर जिला कलेक्टर की अध्यक्षता में गठित समिति विकास की सम्भावनाओं को देखते हुए निर्णय करेगी।

गोद लिये गांवों में जागरूकता के लिए विस्तार कार्यक्रम आवश्यक है। इसके लिए नोडल एजेन्सी कृषि विपणन बोर्ड होगा। यह क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाओं एवं समस्त उपलब्ध इकाइयों और प्रचार माध्यमों का सहयोग लेगा।

विस्तार एवं प्रशिक्षण

राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड द्वारा वर्ष 1994-95 के लिए प्रचार, कृषि विपणन विस्तार और प्रशिक्षण कार्य को नया व्यापक स्वरूप दिया गया है।

जयपुर में प्रशिक्षकों एवं कृषकों के आने पर ठहरने की समुचित व्यवस्था के लिए करीब तीन करोड़ रुपये की लागत से किसान भवन बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है।

कर्नाटक और महाराष्ट्र की तरह जयपुर में भी कृषि विपणन प्रशिक्षण संस्थान के विभिन्न कर्मचारियों, कृषकों, व्यापारियों तथा अन्य मंडी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया जा सकेगा।

मंडी विकास कार्य

राज्य में कृषि विपणन बोर्ड द्वारा कृषि विपणन प्रणाली को सुचारु रूप से लागू करने हेतु उल्लेखनीय नीतिगत प्रयास किये गये हैं। उनमें से मंडी प्रांगणों का वैज्ञानिक ढंग से निर्माण और सम्पर्क सड़कों को तैयार करवाना प्रमुख है।

मंडी प्रांगण विकास परियोजनाएं कृषि विपणन बोर्ड द्वारा तैयार की जाती हैं। ये परियोजनायें तैयार कर राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, नाबार्ड को वित्तीय स्वीकृति हेतु प्रस्तुत की जाती हैं। नाबार्ड द्वारा परियोजना की कुल लागत के अस्सी प्रतिशत तक ऋण बैंकों के माध्यम से स्वीकृत किया जाता है। परियोजना की बाकी लागत केन्द्रीय अनुदान और मंडी समिति की अपनी आय से वहन की जाती है।

वित्तीय रूप से कमजोर मंडियों की परियोजनाएं कृषि विपणन बोर्ड अपने स्तर पर स्वीकृत करता है।

राज्य में मंडी निर्माण कार्य पर वर्ष 1993-94 तक 158.94 करोड़ रुपये व्यय हो चुके हैं। राज्य में अब तक 297 ग्रामीण प्राथमिक मंडियां और 90 ग्रामीण गोदाम निर्मित किये जा चुके हैं।

कृषि विपणन अनुसंधान

राज्य में कृषि विपणन बोर्ड को एक महत्वपूर्ण कार्य दिया गया है कि बोर्ड राज्य सरकार को मंडी समितियों की कृषि विपणन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के बारे में सुझाव और राय दे। इस दायित्व के सुचारु रूप से निर्वहन के लिए एक अनुसंधान प्रकोष्ठ 1992-93 में स्थापित किया गया था।

प्रशीतन गृह

राज्य के फल और सब्जी उत्पादकों को उनकी उपज का

अधिक मूल्य दिलाने के लिए राज्य सरकार ने प्रशीतन गृहों के निर्माण की योजना को स्वीकृति प्रदान की है।

ग्रामीण सम्पर्क सड़कें

राज्य में मंडी प्रांगण निर्माण के पश्चात् ग्रामीण सम्पर्क सड़कों के निर्माण को प्राथमिकता दी जाती है। ग्रामीण सम्पर्क सड़कों के निर्माण से कृषकों को अपना उत्पादन मंडियों तक लाने में सुविधा रहती है तथा ग्रामीण आबादी को भी आवागमन की सुविधा रहती है। इन सड़कों के निर्माण का मुख्य ध्येय यह है कि कृषकों को अपनी उपज को नियमित मंडियों में लाने से अच्छा पैसा मिल सके।

कार्ययोजना (वर्ष 1994-95)

1. मंडी शुल्क से 30 लाख रुपये या इससे अधिक आय वाली 72 मंडियों में वाटर कूलर लगवाना तथा सुलभ काम्पलेक्स की सुविधा प्रदान करना।
2. मंडी प्रांगणों में एस.टी.डी. पीसीओ व फैक्स मशीन लगवाने तथा फोटो कोपीयर लगवाने के लिये स्थान उपलब्ध करवाना।
3. सघन वृक्षारोपण कार्यक्रम प्रारम्भ किया जाना।
4. मंडी समितियों के चुनाव कराने के लिए अधिनियम व नियमों में संशोधन करवाना।
5. जिला स्तर पर मंडी कोष की स्थापना करना।

प्रशासक,
राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड,
जयपुर

लघु कथा

अभिशाप

✍ लल्लन त्रिवेदी

जनेश्वर को देखते ही राधा बिटिया चिल्लाई, "मम्मी! पापा आ गये, पापा आ गये और दौड़ती जाकर उनके पांव से लिपट गई। हाथ का पैकिट छुड़ाने लगी - पापा क्या लाये हो?"

जनेश्वर जैसे कुछ ढूंढ रहे थे। बिटिया की बात पर ध्यान नहीं दिया। चलते-चलते चौखट के अंदर घुस गये। लक्ष्मी को देखते बोले, "बबलू के लिए कपड़े लाया हूं।... लो देखो ठीक है।... बबलू कहां है?"

लक्ष्मी ने पैकिट ले लिया। तब तक बबलू भी कहीं से दौड़ता आकर सामने खड़ा हो गया "क्या है मम्मी?"

"आओ बेटा! आओ! पापा तुम्हारे लिए कपड़े लाये हैं।.. पहनो तो देखे ठीक हैं!" लक्ष्मी ने पैकिट खोला और बबलू को कपड़े पहनाने लगी। राधा रुआंसी हो गयी। "पापा मेरे लिए नहीं लाए।"

जनेश्वर बड़ों की तरह समझाते हुए बोले "नहीं बेटी, अभी तो तेरी फ्राक है न! फट जायेगी तो ला दूंगा!.... भईया छोटा है न! जनेश्वर ने बात बदली। "होम वर्क पूरा कर लिया?" राधा की आंखों से गंगा जमुना बह चली।

"नहीं पापा! बर्तन मांज रही थी।"

"हं अं! बर्तन मांज रही थी! चलो पूरा करो।"

राधा बस्ता लाई ओर पापा के पास अनमनी सी खोलने लगी। बबलू कपड़े पहन चुका था। वह दौड़ता आया और कहने लगा, "दीदी! देखो अच्छे हैं मेरे कपड़े।" राधा ने ललचाई नजरों से देखा और निरीह सी बोली, "ठीक हैं भइया।"

लक्ष्मी राधा को बस्ते से किताबें निकालते देखकर पास चली आई और बोली, "राधा बेटी अभी रख दो बस्ता! चलो झाडू लगाकर सब्जी छोंक दो। राधा मम्मी पापा को टुकुर-टुकुर देखने लगी। मानो उसकी आंखें पूछ रही हो... "मम्मी पापा! लड़की होना अभिशाप है क्या?"

बबलू नये कपड़ों में खिलखिला रहा था।

द्वारा प्रधान डाकघर बांदा,
बांदा (उ० प्र०)-210001

जनसंख्या नियंत्रण में

ग्रामीण सहकारी समितियों की भूमिका

प्रो. उमरावमल शाह

किसी भी देश की जनसंख्या उसका महत्वपूर्ण मानव संसाधन है। प्रत्येक राष्ट्र अपने इस मानव संसाधन को गुणात्मक रूप में विकसित करने के प्रयासों में सतत् प्रयत्नशील रहता है। वही राष्ट्र धनी होता है जिसकी मानव सम्पदा श्रेष्ठ होती है।

भारत की जनसंख्या इस संबंध में एक दूसरा ही पहलू प्रस्तुत करती है। अधिकांश जनसंख्या जीवन के न्यूनतम अभावों में जीवन यापन कर रही है तथा उसका सामाजिक और आर्थिक विकास नगण्य सा प्रतीत होता है। आज भारत की जनसंख्या 90 करोड़ का आंकड़ा पार कर चुकी है। हमारे विकास की समस्त उपलब्धियों को तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या ने निगल लिया है। बेतहाशा "जनसंख्या वृद्धि" के कारण भारत की जनसंख्या उसके लिए वरदान न रह कर एक अभिशाप बन चुकी है। निरन्तर बढ़ती संख्या के कारण मानव संसाधन विकास के भागीरथ प्रयास भी प्रभावहीन लगने लगे हैं। हमारे मानव संसाधनों की यह स्थिति है कि आज भी देश में कम से कम 32 करोड़ 4 लाख लोग निरक्षर हैं, जिनमें महिलाओं की संख्या 19 करोड़ 56 लाख है। वर्तमान स्थिति में । करोड़ 29 लाख बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं। साक्षरता दर में सुधार से हम मानव संसाधन को विकसित तो कर ही सकते हैं पर साथ ही साथ बढ़ती हुई आबादी को भी नियंत्रित कर सकते हैं।

भारत की बढ़ती जनसंख्या

देश की निरन्तर बढ़ती जनसंख्या ने भारत को चीन के बाद विश्व का सबसे बड़ा जनसंख्या वाला देश बना दिया है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में अर्थात् 1901 में अविभाजित भारत की जनसंख्या 23 करोड़ 83 लाख थी जो सन् 1951 में 36 करोड़ 20 लाख हो गई यानि इन 50 वर्षों में देश की आबादी लगभग 12.5 करोड़ बढ़ी है। लेकिन इससे भी कहीं अधिक आबादी गत दशक (1981-1991) में भी बढ़ी। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार आबादी 68 करोड़ 38 लाख थी, वह सन् 1991 की जनगणना के अनुसार बढ़कर 84 करोड़ 39 लाख हो गई। देश में प्रति डेढ़ सैकेण्ड में एक बच्चे का जन्म हो रहा है। प्रतिमिनट 40 बच्चे हमारे देश में पैदा हो रहे हैं। हमारी जनसंख्या प्रतिवर्ष 1 करोड़ 70 लाख बढ़ जाती है। यानि प्रतिवर्ष एक आस्ट्रेलिया या श्रीलंका के समकक्ष की आबादी जुड़ जाती है और प्रति दसवें वर्ष यूरोप की जनसंख्या के बराबर वृद्धि भारत की जनसंख्या में हो रही है। भारत में जनसंख्या वृद्धि दर जो वर्ष 1991 में 2.14 प्रतिशत थी, यदि वह घटकर वर्ष 2001 में 1.42 प्रतिशत हो गई तो भी भारत की जनसंख्या 100 करोड़ तक पहुंच जाएगी। संयुक्त राष्ट्र परिवार नियोजन की रिपोर्ट के अनुसार सन् 2025 तक भारत विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश हो जाएगा। भारत के पास विश्व की कुल भूमि का मात्र 2.4 प्रतिशत हिस्सा है जबकि भारत में विश्व की कुल आबादी की 15 प्रतिशत जनसंख्या रहती है।

जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याएं और प्रभाव

आज देश में जितनी भी समस्याएं उत्पन्न होती हैं उनका सीधा सम्बन्ध बढ़ती जनसंख्या से है। ये समस्याएं चाहे आवास की हों, खाद्यान्न की हों, रोजगार की हों, पानी-बिजली की हों, इन सब की कोई सीमा तो है ही। निरन्तर हो रही जनसंख्या वृद्धि के कारण देश के आर्थिक विकास की दर प्रभावित हो रही है। बेरोजगारी की समस्या बढ़ रही है। अशिक्षा और उससे जुड़े बहुत से पक्ष जैसे स्वास्थ्य, चिकित्सा, खाद्यान्न, बिजली, पानी, पर्यावरण प्रदूषण आदि सभी मुद्दे प्रभावित हो रहे हैं। ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में बढ़ती आबादी गरीबी को जन्म दे रही है क्योंकि जनसंख्या का सबसे गहरा असर कृषकों की भूमि पर पड़ता है। किसान की औसत जोत 2.3 हेक्टेयर से अब 1.6 हेक्टेयर से कम रह गई है। 10 हेक्टेयर से अधिक की जोत अब केवल दो प्रतिशत किसानों के ही पास है, 75 प्रतिशत किसानों के पास दो हेक्टेयर से कम भूमि है और भारत में 57 प्रतिशत किसान ऐसे हैं जिनके पास एक हेक्टेयर से भी कम भूमि है। अतः जनसंख्या वृद्धि का सीधा प्रभाव जमीन पर पड़ता है और शनैः शनैः भू स्वामी लघु, सीमान्त और भूमिहीन कृषक बन जाता है। छोटी-छोटी जोतें कृषि को

अलाभकारी स्वरूप दे देती हैं। किसान भूमि से विमुक्त होकर अन्य रोजगार के अभाव में गरीबी का शिकार हो जाता है। सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थ व्यवस्था निर्धनता और बेरोजगारी व अर्द्धबेरोजगारी का स्वरूप ले चुकी है। गावों और किसानों की स्थिति के लिये निरन्तर जनसंख्या वृद्धि ही मुख्य कारण है और इस पर नियंत्रण इसका निदान भी। बेतहाशा जनसंख्या वृद्धि के कारण विकास के निर्धारित लक्ष्य भी पूरे नहीं किये जा सके हैं।

बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण आवश्यक

जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण पहलू है, परिवार कल्याण कार्यक्रम जिससे कि प्रत्येक परिवार जीवन यापन के उच्च स्तर की धारणा बनाकर जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं का हल ढूंढने में न केवल जागरूक हो अपितु इस दिशा में प्रयत्नशील हो सके।

सामाजिक और आर्थिक विकास में निरन्तर बढ़ती जनसंख्या बाधक नहीं बने और विकास का लाभ प्रत्येक परिवार को अनुभव हो, इसके लिए भारत ने विश्व में सर्वप्रथम परिवार कल्याण कार्यक्रम सन् 1952 में प्रारम्भ किया और योजनाओं में इसके लिए बजट प्रावधानों में निरंतर वृद्धि की। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में जहां मात्र 10 लाख रुपये का प्रावधान किया गया, वहीं द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) में 27 करोड़ रुपये और क्रमशः प्रत्येक योजना में वृद्धि करते हुए सातवीं पंचवर्षीय योजना (85-90) में इसके लिए 3,256 करोड़ रुपये तथा आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में 6,500 करोड़ रुपये का प्रावधान कर 'जनसंख्या नियंत्रण' को योजना के छः प्रमुख उद्देश्यों में से एक उद्देश्य घोषित कर दिया। वर्ष 1993 तक देश में परिवार नियोजन कार्यक्रम पर पांच हजार करोड़ रुपये से अधिक खर्च किए जा चुके हैं और इससे पिछले 40 वर्षों (1951-91) में देश में 44.1 प्रतिशत दम्पतियों को बच्चे पैदा करने से रोका गया है और इस प्रकार 13 करोड़ अनचाहे जन्मों को रोकने में सफलता मिली है।

इतना सब कुछ होने के बावजूद हम परिवार नियोजन कल्याण कार्यक्रम की उपादेयता को सही ढंग से जनता के समक्ष प्रस्तुत करने में अभी तक सफलता से कोसों दूर हैं। यद्यपि भारत के परिवार कल्याण कार्यक्रम से प्रभावित होकर थाइलैंड, इण्डोनेशिया, दक्षिणी कोरिया तथा चीन ने अपने यहां जनसंख्या स्थिर कर ली है, पर आज भी हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि दर में वांछित कमी नहीं आ पाई है।

वर्ष 1971-81 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर 2.2 प्रतिशत आंकी गई थी। यह 1981-91 के दशक में घटकर केवल 2.14 प्रतिशत तक ही पहुंच पाई है। राज्यवार देखा जाए तो केवल केरल, तमिलनाडु, गोवा और कर्नाटक राज्यों को छोड़कर गत तीन दशकों में देश में जनसंख्या वृद्धि दर दो प्रतिशत से ऊपर रही है। उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पं. बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान राज्य देश की 55 प्रतिशत जनसंख्या लिए हुए हैं और इन राज्यों में जनसंख्या वृद्धि दर राष्ट्रीय औसत 2.14 से अधिक रही है।

इस स्थिति के पीछे जो मुख्य बात उभर कर सामने आई वह यह है कि किसी भी राष्ट्रीय राजनैतिक दल ने परिवार नियोजन कार्यक्रम पर आज तक जोर नहीं दिया है और इसे केवल सरकार के क्रियान्वयन का विषय माना जाता रहा है। प्रबल इच्छा शक्ति के अभाव में आबादी नियंत्रण के प्रति सही वातावरण नहीं बन पाया, इसलिए जनसंख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। दूसरी ओर परिवार नियोजन के प्रति ग्रामीण जनता में नाना प्रकार की भ्रांतियां व्याप्त हैं और इसके निवारण हेतु ग्रामीण संस्थाओं, विशेष रूप से पंचायतों और सहकारी संस्थाओं की भूमिका नगण्य सी रही है। अतः आज सबसे बड़ी आवश्यकता है कि लोगों में परिवार नियोजन के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए ये संस्थाएं भरसक प्रयास करें। मात्र सरकारी प्रयासों से परिवार कल्याण कार्यक्रम कतई भी सफल नहीं हो सकता, इसे एक जन आन्दोलन का रूप देना ही होगा। इस दिशा में सहकारी समितियां प्रेरक की भूमिका निबाह सकती हैं। ये जनसंख्या नियंत्रण के बारे में "सामाजिक जागरूकता" पैदा कर सकती हैं तथा नियोजित और छोटे परिवार के प्रति रुझान भी।

सहकारी समितियों की भूमिका

जनसंख्या नियंत्रण में सहकारी समितियों की व्यापक और प्रभावी भूमिका हो सकती है। इसे कार्यक्रम के रूप में विकसित किया जाना चाहिए।

ग्रामीणों के लिए उन्नत कृषि, उन्नत व्यवसाय व उन्नत जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु ग्रामीण क्षेत्र में एक संस्थागत स्वरूप 'सहकारी समितियों' के रूप में विकसित हुआ है। ग्रामीण क्षेत्र में लगभग 88,341 प्राथमिक कृषि साख/बहुउद्देशीय सेवा समितियां 8 करोड़ 12 लाख सदस्यों सहित कार्यरत हैं और इन्होंने 99 प्रतिशत गांवों तथा 65 प्रतिशत परिवारों तक अपनी पहुंच

बनाई है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में ही 67,317 ग्राम दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों ने लगभग 86 लाख ग्रामीण परिवारों तक अपनी पहुंच बनाई है। इन दुग्ध समितियों की विशेषता यह है कि इनसे अधिकांशतः महिलाएं जुड़ी हुई हैं। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में जिन अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सहकारी आन्दोलन ने प्रवेश किया है, वे हैं सहकारी कृषि विपणन समितियां, कृषि उपज पर आधारित उद्योग जैसे सहकारी शक्कर कारखाने, सहकारी सूत मिलें, सहकारी तेल तथा चावल मिलें, सहकारी शीतगृह, लघु सिंचाई समितियां, श्रमिक सहकारी समितियां, औद्योगिक सहकारी समितियां विशेषतया खादी ग्रामोद्योग से सम्बन्धित तथा हाथ-करघा बुनकर समितियां, कमजोर वर्ग हेतु विशेष निर्मित समितियां जैसे आदिवासी बहुउद्देशीय समितियां, वन श्रमिक सहकारी समितियां, वनोपज समितियां, मत्स्य सहकारी समितियां, कुक्कुट पालन समितियां आदि। इतने व्यापक स्वरूप में ग्रामीण क्षेत्र की सहकारी समितियों ने क्षेत्र विकास का बीड़ा उठाया है और सामाजिक परिवर्तन में भी गहन भूमिका निभाने की जिम्मेदारी ली है।

इन समितियों के गठन और उद्देश्यों को देखा जाए तो ये जनसंख्या नियंत्रण और परिवार कल्याण कार्यक्रम को जन-भागिता द्वारा जनांदोलन का रूप दे सकती हैं। ये समितियां परिवार कल्याण कार्यक्रम में "प्रेरक" की भूमिका निभाती हुई सामाजिक जागरूकता पैदा कर सकती हैं। विडम्बना यह है कि इतनी व्यापकता लिए हुए ग्रामीण क्षेत्रों में गठित इस जन आधारित संस्थागत ढांचे का अभी तक परिवार कल्याण कार्यक्रम में विशेष योगदान नहीं लिया गया है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इस सहकारी संस्थागत ढांचे से अधिकांश रूप से समाज का निर्बल वर्ग अर्थात लघु एवं सीमान्त कृषक, ग्रामीण दस्तकार वर्ग, भूमिहीन मजदूर, आदिवासी लोग तथा ग्रामीण महिलाएं जुड़ी हुई हैं। यह एक ऐसा वर्ग है जिसे परिवार कल्याण के कार्यक्रम की सर्वाधिक आवश्यकता है।

जनसंख्या विशेषज्ञ सर्वमत हैं कि गरीबी और जनसंख्या वृद्धि का परस्पर घनिष्ठ सम्बंध है। आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग में जन्म दर अधिक देखी जाती है। सहकारिता का मूल उद्देश्य ग्रामीण गरीबी पर प्रहार करना है और ग्रामीण समुदाय में आर्थिक दृष्टिकोण से कमजोर वर्ग के जीवन में सुधार लाना है। अतः जनसंख्या नियंत्रण द्वारा सहकारी समितियों के सदस्यों का जितना आर्थिक विकास होगा, इतनी ही जन्म दर में कमी आएगी।

विश्व विकास रिपोर्ट (सन् 1960) ने स्पष्ट प्रतिपादित किया था कि जनसंख्या वृद्धि में 60 प्रतिशत की कमी विकास से और 15 प्रतिशत योजना से होती है। आर्थिक प्रगति होगी तो जनसंख्या स्वतः नियंत्रित हो जाएगी। डा. कर्णसिंह ने सन् 1974 में बुखारेस्ट में आयोजित विश्व जनसंख्या सम्मेलन में विकास को ही सर्वोत्तम गर्भ-निरोधक की संज्ञा दी। अतः वैचारिक दृष्टिकोण से ग्रामीणों के आर्थिक और सामाजिक विकास में संलग्न सहकारी समितियों को जनसंख्या नियंत्रण में महत्व को नजरअन्दाज करना एक भयंकर भूल होगी और इस तरह सहकारी समितियां एक निश्चित दिशा और कार्यक्रम अपनाकर जनसंख्या नियंत्रण में अपना विशिष्ट योगदान दे सकती हैं।

सहकारी समितियों के कार्य

1. समिति अपने स्तर पर वार्षिक सभाओं तथा विशेष रूप से आयोजित सभाओं में अवसर का लाभ लेते हुए समुदाय को बढ़ती जनसंख्या के दुष्परिणामों तथा परिवार कल्याण कार्यक्रमों से अवगत करा कर उनमें कार्यक्रम अपनाने के प्रति रुचि पैदा करें।

2. सहकारी शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से छोटे परिवार के प्रति सदस्यों में रुझान पैदा करें। छोटे परिवार वाले सदस्य परिवारों के लिये अपने स्तर पर प्रोत्साहन योजना प्रारम्भ करें।

3. महिला सहकारी शिक्षा कार्यक्रम में परिवार कल्याण और जनसंख्या नियंत्रण पर यथेष्ठ बल दिया जाए और इसे शिक्षा कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य समझा जाए।

4. परिवार कल्याण विभाग से सतत सम्पर्क बनाए रखकर समिति के सदस्य परिवार नियोजन के संदेश को घर-घर पहुंचाने में अग्रणी भूमिका निभाएं।

5. समिति के सदस्यों के लिए परिवार कल्याण पर वर्ष में कम से कम एक बार एक दिवसीय सेमिनार/गोष्ठी आयोजित की जाए जिसमें विषय-विशेषज्ञों को आमंत्रित कर परिवार नियोजन, गर्भ-निरोधक साधनों, विवाह की सही आयु, दो बच्चों के जन्म में अन्तर, महिला स्वास्थ्य आदि विषयों पर चर्चा और तत्सम्बन्धी भ्रांतियों का निराकरण किया जाएं।

6. प्रतिवर्ष 11 जुलाई को जनसंख्या दिवस प्रत्येक समिति अपने स्तर पर मनाए जिसमें सदस्यों के अतिरिक्त समस्त ग्रामीण समुदाय को आमंत्रित किया जाए।

7. स्वास्थ्य विभाग के सहयोग से प्रत्येक ग्रामीण सहकारी समिति ग्राम स्तर पर गर्भ निरोधक सामग्री निःशुल्क उपलब्ध कराने की व्यवस्था करे तथा अपने कार्यालय के बाहर परिवार कल्याण सन्देश और कार्यक्रम को स्थानीय भाषा में एक चार्ट के माध्यम से प्रदर्शित करे।

8. सहकारी संस्था के नियमों में इस प्रकार की व्यवस्था हो जिससे समिति के महत्वपूर्ण पदों पर आसीन होने वाले सदस्यों के लिए "एक बच्चा" वाली सीमा निर्धारित हो। इस दिशा में राजस्थान राज्य ने जो पंचायती राज के सम्बन्ध में अध्यादेश जारी किया है, वह सहकारी संस्थाओं के लिए सांकेतिक बन सकता है जिसमें तीसरे बच्चे के जन्म को चुनाव लड़ने व निर्वाचित होने वाले व्यक्ति के लिये अयोग्यता घोषित किया गया है।

9. प्रत्येक समिति अपनी कल्याणकारी निधि में से ऐसे 35 वर्ष से कम उम्र वाले सदस्यों को जो दो बच्चों के उपरांत आपरेशन करवा लेते हैं, हजार रुपये का बाण्ड प्रदान करे जिससे 20 वर्ष पश्चात् 20,000 रुपये प्राप्त हो सकें। इसमें राजस्थान राज्य द्वारा "राजलक्ष्मी" योजना मार्गदर्शक हो सकती है।

10. राष्ट्रीय स्तर की सहकारी संस्थाओं द्वारा सम्बन्धित क्षेत्र की सहकारी संस्थाओं के माध्यम से प्रत्येक राज्य में कम से कम "सहकारिता द्वारा परिवार कल्याण" पर परियोजना शुरू करनी चाहिए जिसमें जनसंख्या नियंत्रण और परिवार कल्याण कार्यक्रमों को परियोजना के अन्तर्गत अपनाई गई सहकारी संस्थाओं को क्रियान्वित किया जाए।

11. राष्ट्रीय सहकारी संघ और राज्य सहकारी संघों द्वारा राष्ट्रीय/राज्य स्तरीय प्रोत्साहन पुरस्कार घोषित किए जाने चाहिए जो प्रतिवर्ष सहकारी सप्ताह के प्रथम दिन जनसंख्या नियंत्रण के क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्धि प्राप्त करने वाली सहकारी समिति को प्रदान किया जाए।

12. राष्ट्रीय सहकारी संघ को "सहकारिता एवं परिवार कल्याण" पर सहकारिता और परिवार कल्याण विशेषज्ञों का कार्यकारी दल गठित करना चाहिए जो परिवार कल्याण पर सहकारी समितियों की भूमिका प्रतिपादित करते हुए सहकारी समितियों के लिए योजना और कार्यक्रम बनाने हेतु सुझाव दे।

अतः कहा जा सकता है कि अभी तक सरकार और सहकारी समितियों द्वारा "जनसंख्या नियंत्रण एवं परिवार कल्याण" विषय पर सहकारिता की भूमिका स्पष्ट रूप से न तो प्रतिपादित की गई है और न ही कोई प्रभावी समन्वित प्रयास ही हो पाये हैं। जनसंख्या नियत्रंण राष्ट्रीय अपरिहार्यता है और इसे केवल सरकारी कार्यक्रम बनाकर रख देना एक बड़ी भूल होगी। सहकारी आन्दोलन इस कार्यक्रम को संस्थागत जनाधार स्वरूप देने में सार्थक भूमिका निभा सकता है जो कि इस कार्यक्रम की महती आवश्यकता है।

"शाह निवास",
धानमण्डी उदयपुर-313001

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता :

व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाऊस
नई दिल्ली - 110001

ग्रामीण विकास के आयाम और उपलब्धियां

डा. बद्री विशाल त्रिपाठी

भारतीय अर्थ व्यवस्था का मूल ढांचा ग्रामीण और कृषि आधारित है। देश की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में रहती है और कृषि क्षेत्र उत्पादन, रोजगार और आय तथा निर्यात प्राप्तियों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसलिए भारतीय अर्थ व्यवस्था के विकास के किसी भी प्रारूप में ग्रामीण विकास प्रयास को वरीयता देना आवश्यक है। वस्तुतः ग्रामीण विकास के बिना भारत के आर्थिक विकास की परिकल्पना ही वास्तविक नहीं रह जाती है। इसलिए भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में भी ग्रामीण विकास पर बल दिया गया। महात्मा गांधी का तो आर्थिक दर्शन ही ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को सक्षम बनाने पर केन्द्रित था। उनका यह स्पष्ट दृष्टिकोण था कि भारत का विकास देश के ग्रामीण क्षेत्र के विकास में ही निहित है। ग्रामीण विकास से आशय ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक सुधार के साथ-साथ व्यापक सामाजिक परिवर्तनों से है। आर्थिक प्रगति के लिए कृषि में संस्थागत और तकनीकी सुधार, ग्रामीण क्षेत्र में परिसम्पत्तियों, औद्योगिक इकाइयों के सृजन, बुनियादी सुविधाओं के विकास और योजनाओं के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, ऊर्जा और आवास की व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाना आवश्यक है।

भारत में योजना के आरम्भ से ही ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक प्रगति और ग्रामीण समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के प्रयास किए गए। ग्रामीण विकास के लोगों की सहभागिता बढ़ाने का प्रयास किया गया। ग्रामीण विकास के लिए योजना काल में ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाएं बनाई गईं। समस्याग्रस्त क्षेत्रों, वर्गों और कृषि के लिए विशेष कार्यक्रम तैयार किए गए। इसके परिणामस्वरूप अर्थ व्यवस्था के परंपरागत स्वरूप में परिवर्तन आया है, लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार हुआ और अब आधुनिक उपभोग की वस्तुएं ग्रामीण क्षेत्रों में देखी जा सकती हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में अब अंधविश्वास व रूढ़ियों पर लोगों की आस्था कम हुई है। परंपराओं के बंधन शिथिल हुए हैं। दूरस्थ जनजातीय क्षेत्रों में विकास की गति तीव्र हुई है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि योजना काल में देश की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है।

क्षेत्रगत उपलब्धियां

ग्रामीण विकास एक व्यापक प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत कृषि विकास, बुनियादी सुविधाओं का विकास, उचित मजदूरी, ग्रामीण औद्योगीकरण, जनस्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण परिवहन आदि के कार्यक्रम सम्मिलित हैं। योजनाकाल में इन समस्त क्षेत्रों में प्रगति हुई है। यहां इनसे सम्बद्ध योजनाकालीन क्षेत्रगत उपलब्धियों का विवरण दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि उपरोक्त में प्रत्येक के लिए विभिन्न योजनाओं में लक्ष्य निर्धारित किए गए और लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु तत्परता दिखाई गयी।

कृषि भारतीय अर्थ व्यवस्था का आधार है। कृषि की प्रगति ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पर प्रत्यक्ष और तात्कालिक प्रभाव डालती है। कृषि क्षेत्र में संस्थागत और तकनीकी सुधार कार्यक्रमों से कृषि उत्पादन में सुधार आया है। खाद्यान्नों की दृष्टि से देश आत्म-निर्भरता की स्थिति में आ गया है। फसल उत्पादन में वृद्धि हुई है। वर्तमान शताब्दी के प्रथम अर्द्धांश में उत्पाद की वृद्धि दर केवल 0.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है और जनसंख्या वृद्धि दर इससे अधिक रही है। इसलिए प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता घट रही थी। परन्तु योजनाकाल में कृषि उत्पादन की औसत वृद्धि दर में पूर्व की तुलना में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है। 1951-52 से 1992-93 की अवधि में खाद्यान्न उत्पादन में 2.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि हुई है जो पहले की तुलना से काफी अधिक है। इस अवधि में धान के उत्पादन में लगभग चार गुना और गेहूं के उत्पादन में लगभग नौ गुना वृद्धि हुई है। गैर खाद्यान्न फसलों की भी प्रगति उल्लेखनीय रही है। फसल संरचना में भी परिवर्तन आया है। प्रतिकूल मौसम वाले वर्ष में भी खाद्यान्न उत्पादन की अधिक तीव्र गिरावट को नियंत्रित कर लिया गया है। यदि हरित क्रान्ति का देश के उत्तर पूर्वी राज्यों और सूखाग्रस्त क्षेत्रों में प्रसार कर लिया गया तो सन 2000 तक 240 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य सरलतापूर्वक प्राप्त कर लिया जाएगा।

ग्रामीण विकास की परिकल्पना में ग्रामीण औद्योगीकरण की भूमिका अत्यन्त प्रमुख है। अंग्रेजों के आने से पहले भारत में कृषि और ग्रामोद्योगों का अद्‌भुत समन्वय था। दोनों एक दूसरे के पूरक थे। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इन उद्योगों की अत्यन्त उपेक्षा की। परिणामतः आजादी के समय तक ग्रामोद्योगों का आधार अत्यन्त क्षीण हो चुका था। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण औद्योगीकरण हेतु व्यापक प्रयास किए गए। भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने और भूमि की प्रति व्यक्ति उपलब्धता घटने के कारण यह अधिक आवश्यक हो गया कि ग्रामोद्योगों का प्रसार किया जाए। योजनाकाल में ग्रामोद्योगों के प्रसार हेतु विभिन्न प्रयत्न किए गए। लघु और ग्रामोद्योग क्षेत्र के लिए वस्तुएं आरक्षित की गयीं और खादी ग्रामोद्योग आयोग की स्थापना से ग्रामीण औद्योगीकरण को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। यातायात, संचार और ऊर्जा की आपूर्ति बढ़ने से ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना में सुविधा हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में लघु और कुटीर उद्योगों के विकास के लिए विभिन्न संरक्षात्मक उपायों के कारण ग्रामोद्योग, खादी वस्त्र, हस्तशिल्प, नारियल जटा, खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों और रेशमी वस्त्र से सम्बद्ध औद्योगिक इकाइयों की संख्या बढ़ी है।

ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में ग्रामीण विद्युतीकरण की भूमिका निर्णायक होती है। विद्युतीकरण से गांवों की गतिहीनता और शिथिलता समाप्त होती है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता बढ़ती है। यह कृषि विकास और ग्रामीण औद्योगीकरण में सहायक है। ग्रामीण क्षेत्र के लिए एक आवश्यक सुविधा मानकर प्रथम पंचवर्षीय योजना में ही ग्रामीण विद्युतीकरण का कार्यक्रम आरंभ किया गया। 1965-66 और 1966-67 के सूखे के बाद ग्रामीण विद्युतीकरण में विशेष प्रगति हुई। सातवीं योजना के आरम्भ में देश में विद्युतीकृत गांवों की संख्या 3,70,322 थी जो देश के समस्त गांवों का 76.9 प्रतिशत थी। सातवीं योजना में 1,18,101 गांवों का विद्युतीकरण किया गया। इस प्रकार सातवीं योजना के अंत तक कुल 4,88,422 गांव विद्युतीकृत थे जो देश के समस्त गांवों का 81 प्रतिशत थे। जनजातीय जनसंख्या वाले और अनुसूचित जाति के लोगों के गांवों के विद्युतीकरण के लिए विशेष प्रयास किए जा रहे हैं। देश के समस्त 1.11 लाख जनजातीय गांवों में से 70 हजार गांवों का विद्युतीकरण किया जा चुका है। ग्रामीण विद्युतीकरण की गति तीव्र होने से कृषि कार्यों के लिए भी अब विद्युत का प्रयोग होने लगा है। कई राज्यों यथा पंजाब, हरियाणा, तमिलनाडु, दादर और नगर हवेली, लक्षद्वीप और केरल के समस्त गांवों का पूर्ण विद्युतीकरण किया जा चुका है। ग्रामीण विद्युतीकरण बढ़ने से ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक क्रियाओं में विविधता आई है। आठवीं योजना में कुल 50,000 गांवों के विद्युतीकरण का लक्ष्य रखा गया है जिसमें 10,000 गांव वे होंगे जो अत्यन्त दूर और दुर्गम क्षेत्रों में हैं।

परिवहन साधनों का विकास पिछड़े और दूरस्थ क्षेत्रों के विकास की नई संभावनाएं उत्पन्न करता है। यह वैचारिक और भावनात्मक अनुकूलन में योगदान करके अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ बनाता है। परिवहन साधनों का विकास करोड़ों लोगों को अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रोजगार प्रदान करके बेरोजगारी को कम करता है। परिवहन साधनों का ग्रामीण क्षेत्र में प्रसार, ग्रामीण विकास का प्रमुख सूचक है। भारत में योजनाकाल में परिवहन साधनों, विशेषकर सड़कों का तीव्र प्रसार हुआ है। ग्रामीण सड़कों के निर्माण का कार्य, जवाहर रोजगार योजना, प्रधानमंत्री की रोजगार योजना और सुनिश्चित रोजगार योजना के अंतर्गत भी किया जा रहा है। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अंतर्गत यह लक्ष्य रखा गया है कि समस्त प्रमुख गांवों को पक्की सड़क से जोड़ दिया जाए। आठवीं योजना के अंत तक 1000 या इससे अधिक जनसंख्या वाले समस्त गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ दिया जायेगा। इसी प्रकार 1000 से कम जनसंख्या वाले गांवों को भी सर्वकालिक सड़कों से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है ताकि वहां आवागमन की सुविधा हो सके।

शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रसार व्यक्ति में सक्षमता उत्पन्न करता है। इनसे व्यक्ति के दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन होता है। योजनाकाल में ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षण संस्थाओं की संख्या और साक्षरता का प्रतिशत बढ़ा है। नवीन प्रकृति वाले गैर परंपरागत पाठ्यक्रमों में भी ग्रामीण युवकों का समावेश बढ़ा है। 1991 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में साक्षरता 44.2 प्रतिशत थी। सामाजिक-आर्थिक विकास के मुख्य कारक के रूप में शिक्षा के महत्व को देखते हुए 'सबको शिक्षा' का लक्ष्य रखा गया है। ग्रामीण क्षेत्र में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना से आधुनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा सुविधाओं का प्रसार हुआ है। भारत 1978 की "आल्मा एटा घोषणा" का एक सदस्य है। इसने प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा पर जोर देते हुए सन 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य का लक्ष्य निर्धारित किया है। इसके अनुसार 1983 में "सभी के लिए स्वास्थ्य" की नीति अपनाई गई। लोग अब

आधुनिक चिकित्सा पद्धति के प्रति अग्रसर हुए हैं और स्वास्थ्य के प्रति सजग हुए हैं। ग्रामीण क्षेत्र में हाल के वर्षों में जनसंचार माध्यमों का तीव्र प्रसार हुआ है। यह प्रयास किया जा रहा है कि समस्त ग्राम पंचायतों को दूर संचार माध्यमों से जोड़ दिया जाये। इसी प्रकार बैंकिंग और बीमा क्षेत्र का भी ग्रामीण क्षेत्र में तीव्र प्रसार हुआ है।

विभिन्न क्षेत्रगत उपलब्धियों का उपरोक्त विवरण यह स्पष्ट करता है कि योजनाकाल में ग्रामीण विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया जिसके सकारात्मक परिणाम स्पष्ट हैं। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था प्रगति पथ पर अग्रसर हुई है। ग्रामीण गरीबी में लगातार कमी आई है।

ग्रामीण विकास के संदर्भ में की गई क्षेत्रगत और समष्टि उपलब्धियों का उपरोक्त विवरण ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के विकास का स्पष्ट द्योतक है। परन्तु उपरोक्त उपलब्धियां आवश्यकता की अपेक्षा अत्यन्त कम है। अभी भी देश के ग्रामीण क्षेत्र की लगभग एक तिहाई जनसंख्या का गरीबी रेखा से नीचे रहना, व्यापक निरक्षरता, गंभीर बेरोजगारी और अल्परोजगार अत्यन्त निराशाजनक पहलू हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में संचार माध्यमों कीं बढ़ती पैठ के कारण ग्रामीण जनसंख्या की जीवन शैली में परिवर्तन आया है। इस ग्रामीण संस्कृति का क्षय हो रहा है। कृषि, परिवहन और स्वास्थ्य सेवाओं के विकास का वर्तमान स्वरूप ग्रामीण जैव-विविधता में कमी उत्पन्न कर रहा है। विभिन्न फसलों की कई प्रजातियां, क औषधीय वनस्पतियां और उपयोगी कीटाणु नष्ट होते जा रहे हैं इसी प्रकार पशुधन की विविधता में कमी आ रही है। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के संदर्भ में एक अधिक खटकने वाली बात यह है कि ग्रामीण क्षेत्र के अति प्रमुख व्यवसाय कृषि क्षेत्र में पूंजी निर्माण की दर घटी है जबकि आगामी वर्षों में खाद्यान्नों की मांग में व्यापक वृद्धि का अनुमान है। ग्रामीण क्षेत्र में विशेषकर कृषि क्षेत्र में हाल के वर्षों में आर्थिक विषमता घटी है, परन्तु पूर्वत विद्यमान आर्थिक विषमता अत्यन्त अधिक है। अतः आवश्यकत यह है कि ग्रामीण जनसंख्या के लिए रोजगार अवसरों का व्यापक सृजन किया जाए और ग्रामीण जनसंख्या को उत्पादक बनाने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए। इस संदर्भ में शिक्षा की भूमिक अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शैक्षिक प्रसार से श्रम शक्ति में गुणवत्ता का विकास होगा और उत्पादकता बढ़ेगी। प्रधानमंत्री की रोजगार योजना और सुनिश्चित रोजगार योजना के साथ-साथ अन्य ग्रामीण विकास और रोजगार सृजन कार्यक्रमों का क्रियान्वयन ग्रामीण विकास की दिशा में सराहनीय प्रयास है।

78/3, बांध रोड, एलनगंज,
इलाहाबाद-221002

शानदार जलवायु, ऊंचे पर्वतों, विशाल नदियों और विस्तृत समुद्री किनारों के रूप में भारत के पास असीमित संसाधन हैं। इनके पूर्ण उपयोग से गांवों में निर्धनता और बीमारियां दूर हो जानी चाहिए थीं। लेकिन बगैर शारीरिक श्रम के, मानसिक श्रम के कारण हम शायद विश्व के सबसे कम आयु वाले, संसाधनहीन और शोषित राष्ट्र बन गए हैं।

–महात्मा गांधी

ग्रामीण विकास में पंचायतों की भूमिका

भागचन्द्र जैन

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था–"भारत की आत्मा गांवों में बसती है।" गांव की प्रगति ही सबकी प्रगति है। बापू ने यह कल्पना की थी कि गांव-गांव में पंचायती राज जन-जन के विकास में सहभागी बने। इसे साकार करने के लिए समय-समय पर विभिन्न प्रयास किए गए। हमारे देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि ग्रामीण विकास की तीन मूलभूत संस्थाएं हैं–सहकारी समिति, ग्राम पंचायत और पाठशाला। सहकारी समिति से आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, ग्राम पंचायत से राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और पाठशाला से शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। पंचायती राज की शुरूआत करते हुए पंडित नेहरू ने कहा था कि "वास्तविक बदलाव निःसंदेह गांव से आता है, गांव में रहने वाले लोगों से ही होता है और वह बाहर से थोपा नहीं जाता, पंचायतों को विकास संबंधी कार्यों के अधिकार देने से हमारे ग्रामीण क्षेत्रों की समूची पृष्ठभूमि बदल सकती है और वहां रहने वाले लोग ज्यादा आत्म-निर्भर और अपनी जिम्मेवारी के प्रति जागरूक बन सकते हैं।"

युवा प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने 5 मई 1989 को पंचायती राज सम्मेलन को संबोधित करते हुए कहा था कि–"जब योजना पंचायती राज संस्थाओं के अनुभवों और प्रस्तावों पर आधारित होगी; तभी वह हमारे लोगों की बुनियादी जरूरतों, उनकी आकांक्षाओं, उनकी इच्छाओं, उनकी आवश्यकताओं को कारगर ढंग से पूरा करेगी।" 24 अप्रैल 1993 से 73वां संविधान संशोधन अधिनियम लागू किया गया, जिसके अंतर्गत त्रिस्तरीय पंचायत प्रणाली स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। इस प्रणाली में हर पांच वर्ष बाद चुनाव द्वारा पंचायतें गठित किए जाने का प्रावधान है। सभी राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में पंचायती राज संबंधी कानून बनाए गए हैं।

मध्य प्रदेश में पंचायती राज प्रारम्भ

मध्य प्रदेश पंचायती राज की शुरूआत करने वाला पहला राज्य है। इस विशाल राज्य में 29 दिसम्बर 93 को संविधान के 73वें संशोधन के अनुरूप विधानसभा में मध्य प्रदेश पंचायती राज विधेयक 1993 प्रस्तुत किया गया, जिसे दूसरे दिन पारित कर दिया गया। मई-जून 1994 में मध्य प्रदेश में ग्राम पंचायतों, जनपद पंचायतों और जिला पंचायतों के चुनाव सम्पन्न हुए। मध्य प्रदेश में पंचायती राज से ग्राम राज और ग्राम राज से स्वराज सार्थक करने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया गया तथा 20 अगस्त 1994 को राज्य की पंचायतों को व्यापक अधिकार दिए गए।

मध्य प्रदेश में वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार 76.79 प्रतिशत व्यक्ति गांवों में रहते हैं। ग्रामीण विकास के लिए पंचायतों को अपने अधिकारों, दायित्वों का पूर्णरूपेण निर्वाह करना होगा, तब ही स्वराज का सपना साकार होगा।

ग्राम पंचायतों के दायित्व

ग्राम पंचायतें अपने क्षेत्र के सर्वांगीण विकास के लिए जिम्मेदार होंगी। ग्राम पंचायत स्तर पर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया जाएगा। ग्रामीण रोजगार की सभी योजनाओं पर निगरानी रखने का दायित्व ग्राम पंचायतों का होगा। कृषि और बागवानी विकास की योजनाओं के द्वारा अपने क्षेत्र के उत्पादन तथा उपज बढ़ाने की जिम्मेदारी पंचायतों को सौंपी गई है। निराश्रितों की सहायता, आंगनवाड़ियों का संचालन तथा शिक्षा का कार्य भी ग्राम पंचायतों को सौंपा गया है। इसके अलावा पेयजल की व्यवस्था, नल-जल, प्रकाश और ऊर्जा योजनाओं को लागू करने की जिम्मेदारी ग्राम पंचायतों की है। पेयजल हेतु हैंड पम्पों की व्यवस्था ग्राम पंचायतें करेंगी। तीन लाख रुपये की नल जल योजनाओं के निर्माण का अधिकार ग्राम पंचायतों को दिया गया है। तेंदू पत्ते के संग्रहण के निरीक्षण और पर्यवेक्षण का कार्य भी ग्राम पंचायतें करेंगी। साथ ही पंचायतें सड़कों, नालियों, छोटी पुलियों, भवनों, जलमार्गों के निर्माण का कार्य करेंगी।

परिवार कल्याण, टीकाकरण, महामारियों की रोकथाम और उपचार, बच्चों के स्वास्थ्य परीक्षण, शिशु शिक्षा, सुरक्षित मातृत्व तथा महिला और बाल विकास की जिम्मेदारी ग्राम पंचायतों को दी गई है। इसके आलावा अब ग्राम पंचायतें तालाब व्यवस्था, ऋण पुस्तिका विवरण, अविवादित भूमि विभाजन और नामांतरण का कार्य भी करेंगी। ग्राम पंचायतें कूप गहरीकरण तथा नलकूप

खुदवाने का कार्य भी करेंगी। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत राशन कार्ड बनाने का कार्य भी अब ग्राम पंचायतों को दिया गया है। वे अपने अंचल में नए डाकघर के लिए प्रस्ताव भेज सकती हैं और सार्वजनिक मार्गों से अतिक्रमण हटाने, भवन निर्माण पर नियंत्रण रखने, मार्गों का नामकरण करने तथा बाजार मेलों के विनिमयन के अधिकार भी ग्राम पंचायतों को दे दिए गए हैं।

जनपद पंचायतों के दायित्व

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ट्राइसेम तथा ग्रामीण रोजगार की योजनाओं के क्रियान्वयन पर निगरानी की जिम्मेदारी जनपद पंचायतों को सौंपी गई है। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन, महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम और साक्षरता कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी जनपद पंचायतों की है। अपने विकास खंड की शालाओं का प्रबंधन और निरीक्षण करने का उत्तरदायित्व और शालाओं की छात्रवृत्ति पर निगरानी जनपद पंचायतों को सौंपी गई है। पांच लाख रुपये तक लागत वाले शाला भवनों का निर्माण इनके अधीन रहेगा। क्षेत्रीय तालाबों की व्यवस्था, भूमि सुधार और भूमि संरक्षण का कार्य भी जनपद पंचायतें कर रही हैं। सामाजिक सुरक्षा और पेंशन योजना का क्रियान्वयन जनपद पंचायत द्वारा किया जाएगा।

जिला पंचायतों के दायित्व

जिला पंचायतें एक ओर शासन की इकाई के रूप में कार्यरत हैं, वहां दूसरी ओर जनपद पंचायतों की योजनाओं को समन्वित कर जिले के सर्वांगीण विकास हेतु प्रयासरत हैं। विभिन्न विभागों की हितग्राही योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन जिला पंचायतों द्वारा किया जा रहा है। सामाजिक वानिकी, कृषि और बागवानी विकास, वन और पर्यावरण सुधार, पशुधन, मत्स्य पालन, प्रौढ़ शिक्षा, सहकारिता तथा महिला और बाल विकास की शासकीय योजनाओं के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी जिला पंचायतों की है। जिला पंचायतों को दस लाख रुपये तक के शाला भवन बनवाने का कार्य दिया गया है। बंधुआ मजदूरी विमुक्ति अधिनियम क प्रभावी नियंत्रण के लिए जिला पंचायतें कारगर सिद्ध होंगी, ढा सौ हेक्टेयर तक सिंचाई परियोजनाओं का निर्माण और प्रबंध जिला पंचायतों द्वारा किया जाएगा।

मध्य प्रदेश में पंचायतों को ग्रामीण विकास के व्यापक अधिकार दिए गए हैं। आशा है कि इन अधिकारों का क्रियान्वयन निष्पक्ष रूप से इस प्रकार किया जाएगा जिससे 'पंच परमेश्वर' की भूमिका चरितार्थ हो सकेगी और देश में मध्य प्रदेश एक आदर्श राज्य बन सकेगा। पंचायती राज की नींव मध्य प्रदेश के बाद त्रिपुरा में भी चुनाव द्वारा रखी जा चुकी है।

गांवों के सर्वांगीण विकास के लिए पंचायतों को निम्नलिखित कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर अपनाना चाहिए जैसे–

(1) गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों का सर्वेक्षण इस प्रकार किया जाए कि कोई भी गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाला परिवार इस सर्वेक्षण सूची में शामिल होने से छूट न जाए।

(2) पंचायतों को सबसे बड़ी जवाबदेही यह भी सौंपी गई है कि वे अपने गांव में शुद्ध पेयजल की व्यवस्था करें। नागरिकों को शुद्ध पीने का पानी उपलब्ध हो जाने से विभिन्न बीमारियों पर नियंत्रण पाने में सहायता मिलेगी।

(3) प्रगति की हर कड़ी को गांव से जोड़ने के लिए ग्रामीण विकास की योजनाओं का लाभ लाभार्थियों तक पहुंचाना होगा।

(4) बेरोजगारों को रोजगार के अवसर देने के लिए पंचायतों को सक्रिय भूमिका निभानी होगी।

(5) स्वास्थ्य सुविधाओं को गांव-गांव तक पहुंचाना होगा।

सहायक प्राध्यापक,
कृषि एवं प्राकृतिक संसाधन,
अर्थशास्त्र विभाग, इंदिरा गांधी
कृषि विश्वविद्यालय,
रायपुर (मध्यप्रदेश) - 492012

महिलाओं का सर्वांगीण विकास

अमित कुमार सिंहल

महिलाओं का उत्थान किसी भी राष्ट्र के मानव संसाधन विकास तथा निर्धनता उन्मूलन प्रयासों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है। महिलाओं को अधिकार सम्पन्न तथा स्वावलम्बी बनाना और उनके राजनैतिक, आर्थिक और स्वास्थ्य के स्तर में सुधार लाना अत्यंत आवश्यक है। महिलाओं की स्थिति और राष्ट्रीय विकास के बीच एक सीधा और सुस्पष्ट संबंध है। सरकार ने महिलाओं को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने के लिये कई कल्याणकारी और विकास योजनाएं शुरू की हैं। महिलाओं के अधिकारों और हितों की सुरक्षा के लिये कई विधायी उपाय भी किये गये हैं।

सत्तर के दशक में महिलाओं की स्थिति से संबंधित समिति की रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया गया था कि महिलाओं के विकास को सभी योजनाओं का मुख्य अंग बना दिया जाए। वर्ष 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाना, महिलाओं के लिये राष्ट्रीय कार्य योजना तैयार किया जाना और प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में राष्ट्रीय समिति का गठन इस बात को दर्शाता है कि महिलाओं के विकास को कितना अधिक महत्व दिया गया। राष्ट्रीय महिला आयोग, जो कि एक संविधिक इकाई है, का गठन 1992 में हुआ। केन्द्र सरकार महिलाओं से संबंधित मुख्य नीति निर्देशकों के बारे में आयोग से सलाह मश्विरा करेगी। इसके अलावा आयोग महिलाओं के अधिकारों और हितों की रक्षा करेगा। महिलाओं के लिए बनी राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना (1988-2000) भविष्य के दिशा निर्देशों का उल्लेख करती है।

महिलाओं की सुरक्षा, उनके प्रति भेदभाव समाप्त करने और उन्हें राजनैतिक रूप से सशक्त बनाने के लिए कई कानून बनाए गए हैं। भारत के संविधान में समानता का अधिकार एक मूलभूत अधिकार है। विभिन्न संविधिक धाराओं में उत्तराधिकार और संपत्ति का अधिकार, विवाह, तलाक, महिलाओं के शारीरिक शोषण को रोकना, दहेज की प्रथा का उन्मूलन तथा समान वेतन जैसे अधिकार शामिल हैं। महिला कर्मचारियों के लिए श्रम कानूनों में विशेष व्यवस्था है। भ्रूण के लिंग निर्धारण करने वाली तकनीक का दुरुपयोग तथा तदुपरांत स्त्री भ्रूण की हत्या को रोकने के लिये विधायी स्तर पर प्रयास हो रहा है। संविधान का 73 वां और 74 वां संशोधन महिलाओं के लिए शहरी तथा ग्रामीण इलाकों के स्थानीय निकायों में से एक तिहाई स्थान आरक्षित करने की व्यवस्था करता है।

महिलाओं के विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं के योगदान को स्वीकार किया गया है। महिलाओं के कई संगठन और स्वयंसेवी संस्थाएं समाज में महिलाओं की स्थिति को सुधारने में सक्रिय रूप से कार्य कर रही हैं। इन संस्थाओं को महिलाओं के विकास को बढ़ावा देने और उन्हें नये क्रियाकलापों में भाग लेने को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार से आर्थिक सहायता मिलती है। महिलाओं को प्रशिक्षण और रोजगार उपलब्ध कराने के लिये राज्यों में महिला विकास निगमों की स्थापना की गयी है। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड स्वयंसेवी संस्थाओं को गरीब महिलाओं को रोजगार प्रदान करने के लिये उत्पादन केन्द्र स्थापित करने के लिए मदद देता है। कृषि कार्यों में महिलाओं को और कुशल बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। खादी और ग्रामोद्योग क्षेत्र ने ग्रामीण महिलाओं की आय को बढ़ाने और उन्हें ज्यादा रोजगार उपलब्ध कराने के लिये कई उपाय किये हैं।

महिलाओं के स्वास्थ्य और पोषाहार स्तर को सुधारने के लिये महिला और बाल स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत किया गया है। गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं को 100 दिनों तक आयरन और फालिक एसिड दिया जाता है। महिलाओं को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बनाने के लिए समय-समय पर कार्यशालाएं आयोजित की जाती हैं। प्रसव को सुरक्षित बनाने के लिये अप्रशिक्षित पारम्परिक दाइयों को प्रशिक्षित किया जा रहा है।

सरकार अब तक उपेक्षित किशोर वय की लड़कियों, विशेषकर स्कूली पढ़ाई छोड़ देने वाली लड़कियों, की तरफ विशेष ध्यान दे रही है और उन्हें स्वास्थ्य और पोषाहार देखभाल, कार्यसाधक साक्षरता और व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इसके अलावा बालिका शिशु के अस्तित्व, संरक्षण और विकास पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। सरकार बहुप्रचार माध्यम अभियान के जरिये बालिका शिशु के महत्व पर जोर दे रही है। बालिका शिशु के लिये बनी राष्ट्रीय कार्य योजना बालिका शिशु की विशिष्ट समस्याओं को विधायी, प्रशासनिक और अन्य उपायों से सुलझाने का प्रयास करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति महिलाओं को शिक्षित और अधिकार सम्पन्न बनाने पर बल देती है। औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा में लड़कियों के नामांकन और उनकी शिक्षा जारी रखने, शिक्षकों के रूप में ग्रामीण महिलाओं की भर्ती और पाठ्यक्रम में महिला और पुरुष के भेदभाव को दूर करने पर बल दिया गया है।

महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार करने और उनमें आत्मविश्वास पैदा करने के लिये महिला समृद्धि योजना प्रारंभ की गयी है। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं में बचत की आदत को बढ़ावा देना और उनकी वित्तीय परिसम्पत्तियों में सुधार लाना है। इस योजना के अंतर्गत यदि कोई ग्रामीण महिला एक वर्ष की निश्चित अवधि के लिए 300 रुपये तक जमा करती है तो उसे जमा राशि पर सरकार की ओर से 25 प्रतिशत प्रोत्साहन राशि प्राप्त होगी।

इसके अलावा एक राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना भी की गयी है। इस कोष का उद्देश्य सर्वाधिक निर्धन और परिसम्पत्ति विहीन महिलाओं की जरूरतों को पूरा करना है जिन्हें ऋण की आवश्यकता है किन्तु जिनकी पहुंच औपचारिक बैंकिग अथवा ऋण प्रणाली तक नहीं है। इससे अनौपचारिक क्षेत्र में महिलाओं के लिये ऋण संबंधी सेवाओं का एक राष्ट्रीय नेटवर्क विकसित करने में मदद मिलेगी और महिलाओं के स्वरोजगार प्रयासों को बढ़ावा भी मिलेगा।

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि वास्तविक विकास तभी स्थायी रूप से हो सकता है जब महिलाओं को उसमें शामिल किया जाए, जो न केवल देश की आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती हैं बल्कि जो देश के आर्थिक बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निबाह सकती हैं।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

(पृष्ठ 18 का शेष)

ग्रामीण विपणन...

जरूरतों को पूरा करने के लिए माल की जमानत पर ऋण उपलब्ध कराये जाते हैं।

सरकार ने कानून बनाकर विनियमित मंडियों की स्थापना की है जिनका संचालन बाजार समितियां करती हैं जिनमें किसानों के भी प्रतिनिधि रहते हैं। ये समितियां देखती हैं कि सही बाटों और तराजुओं का इस्तेमाल हो, बिचौलिये न हों और किसानों को उचित कीमतें मिलें। हर तरह बेईमानी और हेराफेरी को दूर रखा जाय। आपसी विवादों का निपटारा भी ये समितियां करती हैं। ग्रामीण विक्रेताओं के ठहरने का भी इन्तजाम किया गया है।

स्वतंत्रता के बाद सहकारी विपणन की सुविधाएं तेजी से बढ़ी हैं। नेफेड और राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम के प्रयासों से हर प्रकार के ग्रामीण माल के विपणन में सहायता प्रदान की जाती हैं। फल-सब्जियों से लेकर दस्तकारी की वस्तुएं ठीक दाम पर बेचकर उनके उत्पादक शोषण से बचते हैं और अपनी आय को बढ़ा पाते हैं। इसी प्रकार खादी ग्रामोद्योग आयोग की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। उसने दस्तकारियों और कई कृषि उत्पादों के लिए उत्पादकों को उचित मूल्य प्राप्त करवाने में काफी योगदान दिया है। वस्त्रों के अतिरिक्त चमड़े के सामानों, हाथ से बने कागज, शहद, मसालों आदि के उत्पादक काफी लाभान्वित हुए हैं।

केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों की ओर से ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं के विपणन के लिए देश भर में इम्पोरियम खोले गये हैं तथा उनके निर्यात की व्यवस्था की गयी है। इसके अतिरिक्त मेलों और प्रदर्शनियों का समय-समय पर आयोजन किया जाता है।

कृषि उत्पादों की ग्रेडिंग के लिए सरकार ने कानूनी व्यवस्था की है। 'एगमार्क' का ठप्पा लगाकर अनेक प्रकार की वस्तुओं के उत्पादकों को अच्छी कीमतें प्राप्त करने में सक्षम बनाया जाता है।

सरकार नियमित रूप से अनाजों, दालों, तिलहनों, गन्ना, पटसन, कपास आदि के लिए समर्थन मूल्यों की घोषणा करती है और उनकी खरीदारी की व्यवस्था करती है। भारतीय खाद्य निगम, दुग्ध उत्पादक सहकारी संघों, भारतीय डेरी विकास निगम आदि के प्रयासों से ग्रामीण उत्पादक शोषण मुक्त और खुशहाल हैं।

विपणन के क्षेत्र में सरकार द्वारा आजादी के बाद उठाये गये कदमों से गांवों की स्थिति में काफी बदलाव आया है। यह गुजरात, महराष्ट्र, पंजाब, कर्नाटक आदि राज्यों के भ्रमण से स्पष्ट हो जाता है।

विपणन के क्षेत्र में उठाये गए कदमों का स्थानीय परिस्थितियों में भिन्नता के कारण सारे देश पर एक समान प्रभाव नहीं पड़ा है। मगर आने वाले वर्षों में ग्रामीण शिक्षा और चेतना का स्तर ऊंचा होने के साथ ही पिछड़े राज्य या इलाके भी लाभ उठा पायेंगे। तत्काल आदिवासी इलाकों के उत्पादों के विपणन की व्यवस्था की दिशा में सरकार द्वारा कदम उठाये जाने से काफी कुछ परिवर्तन आदिवासियों के जीवन में देखा जा सकता है। उत्पादन तकनीकों में भी बदलाव आ रहा है।

एम-112 साकेत,
नयी दिल्ली-110017

पर्यावरण से जूझती पर्वतीय महिलाएं

डा. पुष्पेश पाण्डे

पर्यावरण आज विश्व की एक प्रमुख व ज्वलन्त समस्या है। यूं तो सामाजिक तनाव, विषमता तथा दुर्लभता की स्थितियां मानव सभ्यता के विकास के दौर में अनेक बार आईं लेकिन पिछले कुछ वर्षों से इन्होंने चिंताजनक रूप ग्रहण किया है। वैसे देखा जाए तो पर्यावरण मानव-समाज के हर पक्ष से जुड़ा है। यह जितना कल की सच्चाई था, उतना ही आज का यथार्थ है।

अतीत में झांकें तो समाज के विकास की प्रारम्भिक अवस्था से ही प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन के विवरण मिलते हैं जो सामंतीकाल में बढ़ते चले गए। लेकिन ये सबसे अधिक तीव्र, स्पष्ट और व्यापक रूप, पूंजीवाद के उद्‌भव के दौर में ही पा सके। वास्तव में मानव-समाज के सम्पूर्ण इतिहास में मनुष्य प्रकृति के साथ अपने सम्बंधों में फेरबदल करता रहा है। शुरू में प्रकृति के प्रति मनुष्य और समाज का व्यवहार आवश्यकतानुसार उपभोग का था। बाद में यह उपभोग बढ़ने लगा और भिन्न रूप ग्रहण करने लगा। मनुष्य ने प्रकृति प्रदत्त सामग्री का उपयोग ही नहीं किया वरन् उसका शोषण भी किया। मानव उपभोक्ता सम्बंधों का व्यापक दोहन करने का रुख अपनाने लगा। प्राकृतिक संसाधनों के इस अविवेकपूर्ण उपयोग और उपभोग ने कालान्तर में पर्यावरणीय और सामाजिक-सांस्कृतिक विसंगतियों को जन्म दिया। वस्तुतः प्रकृति और मानव समाज की अन्तःक्रिया इतनी व्यापक है कि इसे कभी भी एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। पर्वतीय समाज की अधिकांश घरेलू जरूरतें पूरी करने में प्रकृति की अहम भूमिका होती है। अनाज, ईंधन, चारा, दवाइयां (जड़ी-बूटी) और इमारती लकड़ी—ये सभी प्रकृति से प्राप्त होती है। फिर पानी तो जीवन का आधार ही है और इसकी उपलब्धता भी प्रकृति से जुड़ी है। पर्यावरण या प्रकृति की बर्बादी का सबसे बड़ा नुकसान पर्वतीय महिलाओं को उठाना पड़ रहा है। परिवार में परम्परागत रूप से श्रम का मान्य विभाजन है, उसके अन्तर्गत हर सुबह उन्हें जलाऊ लकड़ी, चारे और पानी की तलाश में दूर-दूर तक जाना पड़ता है। इन्हें हासिल करना लगातार कठिन होता जा रहा है। जलाऊ लकड़ी एकत्र करने में महिलाओं को 5 से 7 घंटे लगते हैं और मीलों भटकना पड़ता है। फिर वन में ईंधन की तलाश के दौरान जंगली जानवरों का खतरा भी होता है। इसलिए महिलाएं एक साथ जाती हैं।

महिलाओं के जिम्मे एक और प्रमुख काम होता है—पशुओं की देखभाल करना और चारा एकत्र करना। लेकिन चारे की कमी और चरागाहों के लगातार नष्ट होने से महिलाओं पर क्या बीत रही है—इस की किसे चिंता है? सुबह घर से निकलने के बाद कई घंटों में लकड़ी और घास का गट्ठर लेकर लौटती हैं। लौटने पर वे घर के काम में लग जाती हैं। पानी लाना, खाना बनाना, बच्चों को खिलाना और जानवरों की देखभाल करना उनके अन्य काम हैं। चाहे वह बूढ़ी हों, जवान हों या गर्भवती, घरेलू जरूरतें तो किसी तरह पूरी करनी ही पड़ती हैं। बीमारी तक के दौरान उन्हें कुछ दिन आराम कर लेने की फुर्सत भी नहीं रहती। घर के पुरुषों की तुलना में उन्हें ज्यादा काम करना पड़ता है।

अक्सर महिलाओं की समस्याओं पर ध्यान नहीं जा पाता। वन विनाश को महिलाओं की समस्या की तरह नहीं देखा जा रहा। जंगल नष्ट होने के बारे में ढेर सारे आंकड़े दिए जाते हैं। लेकिन संकट का मानवीय पहलू महिलाओं का चेहरा है जिसे अक्सर भुला दिया जाता है। महिलाओं पर किए गए कुछ अच्छे अध्ययन भी यह नहीं बता पाते हैं कि ग्रामीण महिलाओं का जीवन प्राकृतिक संपदा की उपलब्धता से कितनी गहराई से जुड़ा है और इनके नष्ट होने से उन्हें कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

गरीबी, खेती में बदलाव होने और काम की तलाश में पुरुषों के शहरों में चले जाने से महिलाओं की स्थिति और भी बिगड़ी है। पुरुषों की कमाई से घर आया पैसा महिलाओं के लिए सुविधा नहीं जुटा पाता, बाहर से आए इस पैसे से चारा, ईंधन और पानी जुटाने का बोझ हल्का नहीं होता क्योंकि उपलब्धता कम है और फिर पैसे से खरीदा भी नहीं जा सकता। प्रकृति से कुछ न कुछ निकाल लेने के लिए दिन भर खटने वाली स्त्री के कारण परिवार का गुजारा बहुत ही कम पैसे में भी चल जाता है और अक्सर इसी दम पर पुरुष शहर में बने रह पाते हैं। पहाड़ के अनेक गांवों

(शेष पृष्ठ 43 पर)

ग्रामीण रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण है : खादी ग्रामोद्योग

राजेश कुमार व्यास

ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने तथा जरूरतमंद लोगों को लाभप्रद रोजगार प्रदान करने के लिए खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र का योगदान गत एक दशक से काफी बढ़ा है। चूंकि देश की अधिकांश जनसंख्या गांवों में ही निवास करती है तथा जनसंख्या के लिए रोजगार जुटा पाना एक बड़ी समस्या है, ऐसे में खादी ग्रामोद्योग संस्थाएं इस दिशा में महत्वपूर्ण सिद्ध होती जा रही हैं। गत वर्षों में खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र के उत्पादन में भी एक ओर जहां काफी वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर इस क्षेत्र में पहले की तुलना में रोजगार की संभावनाएं भी बढ़ी हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिकाधिक अवसर जुटाने के लिए खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग ने एक क्रेश कार्यक्रम शुरू किया है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत चुने गए उद्योगों में अधिकांशतः परम्परागत तथा श्रम प्रधान हैं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत मिट्टी के बर्तन, बांस व बेंत, फाइबर, अनाज, गुड़, दाल प्रसंस्करण, बढ़ईगिरी, लोहारगिरी और अगरबत्ती बनाने वाले कारीगरों को विशेष सहायता दी जाती है। इस प्रकार खादी ग्रामोद्योग आयोग विभिन्न प्रकार के कुटीर उद्योगों को सहायता प्रदान करके रोजगार उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। पहाड़ी, आदिवासी और सीमावर्ती तथा पिछड़े क्षेत्रों में भी खादी तथा ग्रामीण उद्योग के विकास पर विभागीय तथा खादी ग्रामोद्योग आयोग के कार्यान्वयन अभिकरणों द्वारा विशेष ध्यान दिया जा रहा हैं।

वास्तव में तो गांवों में रहने वाले लोगों के पास साधनों और सुविधाओं का अभाव होता है। ऐसे में उनके लिए यह संभव भी नहीं होता कि वे स्वयं अपने लघु और कुटीर उद्योगों की स्थापना कर सकें। अतः आवश्यकता इस बात की ही रहती है कि गांवों में ही लघु और कुटीर उद्योगों की स्थापना की सुविधाएं और साधन जुटाए जाएं। इस दृष्टिकोण से आजकल खादी ग्रामोद्योग संस्थाओं की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। खादी ग्रामोद्योग संस्थाओं द्वारा गांवों में ही ग्रामीण उद्योगों की स्थापना करके लोगों के लिए रोजगार जुटाने के प्रयास किए जाते हैं। अधिकांश गांवों में जहां कृषि के अलावा आय का अन्य कोई साधन नहीं होता खादी ग्रामोद्योग संस्थाएं लोगों को घर बैठे रोजगार उपलब्ध कराने का प्रयास कर रही हैं।

ऊनी खादी की बुनाई, खादी, चमड़ा, तेलों के लिए बीज संग्रह, मधुमक्खी पालन, साबुन, रेशे तथा बांस आदि ग्रामीण उद्योग कार्यक्रम तो मुख्य रूप से गांवों में निवास करने वाली पिछड़ी जातियों के कारीगरों के लिए ही बनाए गए हैं। गांवों में निवास करने वाली पिछड़ी जातियों के बहुत से लोगों को इन उद्योगों के कारण रोजगार मिला है। इससे उनके जीवन स्तर में भी काफी सुधार हुआ है। खादी तथा ग्रामोद्योग क्षेत्र के अंतर्गत पिछड़ी जातियों के विकास हेतु एक विशेष अभियान चलाया गया था जिसके परिणामस्वरूप खादी तथा ग्रामोद्योग क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के 14.71 लाख लोगों को रोजगार मिला।

वास्तव में तो खादी तथा ग्रामोद्योग ने गत वर्षों में ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिला ग्रामीण विकास एजेंसी (डी.आर.डी.ए.) के साथ मिलकर संबंधित क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए खादी तथा ग्रामोद्योग के सघन विकास और विस्तार हेतु चुने गए जिलों में भी एक विशेष कार्यक्रम चलाया गया था। आरम्भ में यह कार्यक्रम कर्नाटक के तीन जिलों तक ही सीमित था परन्तु अब यह 12 राज्यों के 23 से अधिक जिलों में चलाया जा रहा है। कुल मिलाकर 52 माडल चर्खा एकक तथा 2,650 ग्रामोद्योग एकक स्थापित किए गए हैं। विशेष कार्यक्रम के अंतर्गत संबंधित जिलों के 10,500 कारीगरों को विशेष लाभ हुआ जिनमें खादी बनाने वाले 3,800 तथा ग्रामोद्योग वाले 6,700 कारीगर थे। इसे देखते हुए ही कहा जा सकता है कि अब खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र में ग्रामीण कारीगरों की संख्या में वृद्धि हुई है।

खादी तथा ग्रामोद्योग क्षेत्र अपने विविध आर्थिक कार्यकलापों के अंतर्गत केवल पुरुषों को ही नहीं, बल्कि महिलाओं को भी रोजगार उपलब्ध करा रहा है। खादी में कताई का कार्य अधिकांशतः महिलाओं द्वारा ही किया जाता है तथा बुनाई के काम में भी महिलाएं ही सहायक के रूप में कार्य करती हैं। अनाजों, दालों के प्रसंस्करण, पापड़ तथा मसाला बनाने, अखाद्य तिलहनों के संग्रहण, चिकित्सकीय उद्देश्य के लिए विभिन्न जड़ी बूटियों के संग्रहण, लकड़ी की वस्तुएं तथा अन्य उपयोगी उत्पाद, बांस व बेंत के कार्य, फल व सब्जी प्रसंस्करण जैसे ग्रामीण उद्योगों में भी महिलाओं को खादी ग्रामोद्योग ने रोजगार के विभिन्न अवसर उपलब्ध कराए हैं।

वर्ष 1987 में खादी तथा ग्रामोद्योग अधिनियम में संशोधन किया गया था। इस संशोधन के पश्चात तो महिलाओं के लिए रोजगार के अवसरों में बेतहाशा वृद्धि हुई है। अब महिलाएं सिलाई, कढ़ाई, पेपर पिन, स्टोव पिन, सेफ्टी पिन तथा इलेक्ट्रानिकी जैसे

कार्यकलापों में भी हिस्सा लेने लगी हैं। खादी ग्रामोद्योग के विभिन्न आर्थिक क्रियाकलापों के अंतर्गत महिलाओं की भागीदारी 46 प्रतिशत के लगभग है।

खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग ग्रामोद्योग संस्थाओं द्वारा गांवों में ही उद्योगों की स्थापना करके रोजगार उपलब्ध कराने के प्रयास कर रहा है। आर्थिक विकास में खादी ग्रामोद्योग का महत्वपूर्ण योगदान है। ग्रामीण लोगों को रोजगार उपलब्ध करा कर ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या के निदान का महत्वपूर्ण कार्य इस क्षेत्र द्वारा किया जा रहा है। वास्तव में खादी ग्रामोद्योग ने गांवों के आर्थिक विकास में अभी तक पूरा ध्यान नहीं दिया है। अगर यह इस ओर गंभीरतापूर्वक प्रयास करे तो न केवल ग्रामीण बेरोजगारी का पूर्ण रूप से निदान हो जाएगा बल्कि आर्थिक विकास को भी गति मिलेगी।

धर्मनगर द्वार के बाहर,
ओझा भवन के पीछे,
बीकानेर-334004

(पृष्ठ 41 का शेष)

पर्यावरण से जूझती...

में अभी भी ऐसी पर्याप्त जमीन है। जिस पर अगर वन लगें तो उससे कई घरेलू जरूरतें पूरी हो सकती हैं और स्त्रियों की रोज-रोज की मुश्किलें कुछ आसान हो सकती हैं। लेकिन इन मामलों में पुरुष दिलचस्पी नहीं दिखाते। जिस काम से उन्हें नकदी पैसा न मिले, उनका रुझान उस ओर कम ही होता है। आधुनिक आर्थिक व्यवस्था उन्हें सिखा रही है कि सिर्फ रुपया कमा लेने से घर की सभी जरूरतें पूरी हो जाएंगी। पर स्त्रियां ऐसा नहीं मानतीं। उन्हें पता है कि आज भी अनेक महत्वपूर्ण जरूरतें किस तरह पर्यावरण से ही पूरी की जा सकती हैं। इसलिए ऐसे क्षेत्रों में वनरोपण के काम में स्त्रियों की बढ़ती भूमिका और पहल से आश्चर्य नहीं होता।

माना तो यही जाता है कि ईंधन, चारे और खेती आदि के कामों में बुरी तरह से व्यस्त स्त्री के पास पर्यावरण संवर्द्धन का समय कहां होगा। सौभाग्य से 'चिपको आन्दोलन' का अनुभव बताता है कि स्त्रियों ने पर्यावरण को सुधारने के काम में सबसे ज्यादा भाग लिया है और संवर्द्धन के कारण घरेलू जरूरत की चीजों को जुटाने में भी कुछ सुविधा मिली है और खेती भी सुधरी है। जिन इलाकों में पर्यावरण की सबसे अधिक बर्बादी हुई है और जहां स्त्रियों पर काम का सबसे अधिक बोझा बढ़ा है उन क्षेत्रों की स्त्रियां वृक्षारोपण और शराबबंदी जैसे मुद्दों पर आगे आई हैं।

अतः आज योजना बनाने वालों और राजनेताओं के लिए प्रकृति के पुनर्निर्माण से महत्वपूर्ण कोई चीज नहीं होनी चाहिए। पर यह हमारे और पर्यावरण के बीच फिर एक स्वस्थ रिश्ता स्थापित किए बिना नहीं हो सकेगा। इसके लिए हमें इस बात का ख्याल नहीं रखना होगा कि पश्चिम देश दो दशकों में इलेक्ट्रानिक क्रांति में, जैव तकनीक के क्षेत्र में, संचार उपग्रह के मामले में, समुद्र की तलहटी से संपदा निकालने में, सौर सेल और पवनचक्की के मामले में कहां, कितना आगे बढ़ गये हैं और विश्व के तकनीकी ढांचे में क्या-क्या बदलाव आ गया है, हमें यह भी नहीं सोचना होगा कि विकास के भौगोलिक, राजनैतिक दबाव से हमें ये सब चीजें भी हासिल करनी ही पड़ेंगी। हमें तो अपना ध्यान प्रकृति और मनुष्य के आपसी सम्बन्धों के पुनर्निर्माण पर ही लगाना होगा। हमें यह स्वीकार करना होगा कि पर्यावरण और सामाजिक रूप से दुरुस्त प्रकृति की सबसे बड़ी सहयोगी महिलाएं ही हैं। अगर पर्यावरण समस्या को सुलझाना है तो इसे स्त्रियों की भागीदारी के बगैर पूरा नहीं किया जा सकता।

पिछले कुछ वर्षों में कुछ संस्थाओं और आन्दोलनों ने यह सिद्ध किया है कि सब तरह की कठिनाइयों के बावजूद चीजें सुधारी जा सकती हैं और इसके लिए साधना हो तो साधन भी जुट जाते हैं। यह मानना गलत है कि हमारी आबादी इतनी बढ़ गई है कि हमारी प्राथमिक जरूरतें पूरी नहीं की जा सकतीं। सच कहा जाए तो बढ़ती जनसंख्या देश की धरती पर नहीं, बल्कि अक्षम सरकारों पर बढ़ता बोझ है। हर चीज का उत्पादन बढ़ना चाहिए पर उसका वितरण भी होना चाहिए। लेकिन यह तभी हो सकता है जब समाज के विभिन्न अंगों की मर्यादाएं, कर्तव्य व अधिकार फिर से निश्चित किए जाएं।

जब ऐसा होगा तभी हमारी प्राकृतिक सम्पदाएं सुरक्षित रह पाएंगी। इसके साथ हमें प्रकृति का अवैध अंधाधुंध दोहन करने वाले लोगों को दंडित करना पड़ेगा। भय के कारण ही उन पर अंकुश लगेगा और हमारे प्राकृतिक संसाधन तथा पर्यावरण सुरक्षित रहेंगे। सुरक्षित पर्यावरण ही पर्वतीय महिलाओं को संरक्षण दे सकता है।

स्मृति कुंज,
मालाभवन, अल्मोड़ा,
(उत्तर प्रदेश)

ग्रामीण रोजगार में सहायक

सुनिश्चित रोजगार योजना

डा. अशोक कुमार सिंह
अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, देवेन्द्र डिग्री कालेज,
बिल्थरा रोड, बलिया (उ. प्र)

अक्तूबर 1993 से 257 जिलों के 1752 खण्डों के ग्रामीण क्षेत्रों में सुनिश्चित रोजगार योजना कार्यान्वित की जा रही है, जहां पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण योजना चल रही है। इस योजना का उद्देश्य उन ग्रामीण गरीब लोगों, जिन्हें रोजगार की नितान्त आवश्यकता है और जो रोजगार की तलाश में हैं, को अकुशल स्वरूप के शारीरिक श्रम हेतु 100 दिनों का सुनिश्चित रोजगार उपलब्ध कराना है, 100 दिनों के रोजगार का आश्वासन 18 वर्ष से अधिक और 60 वर्ष से कम आयु के उन पुरुषों तथा महिलाओं को दिया जाता है जो आमतौर पर सुनिश्चित रोजगार योजना के तहत शामिल किये गये खण्डों के गांवों में निवास करते हैं। एक परिवार में अधिकतम दो बालिग व्यक्ति इस योजना में रोजगार पा सकेंगे।

उद्देश्य

सुनिश्चित रोजगार योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के उन सक्षम तथा समर्थ शरीर वाले सभी बालिग लोगों को जो काम करने को इच्छुक हैं और जिन्हें काम की जरूरत है लेकिन उन्हें कहीं काम नहीं मिल पा रहा है, को संबंधित जिलों के लिए राज्य सरकार द्वारा निर्धारित गैर-कृषि मौसम के दौरान सामान्य योजना/गैर योजना वाले कार्यों पर अथवा फार्म या अन्य संबंधित कार्यों पर गैर-कृषि मौसम के दौरान शारीरिक श्रम वाला लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना है। इस योजना का गौण-उद्देश्य लोगों के लिए सतत रोजगार तथा विकास हेतु आर्थिक आधारभूत ढांचे तथा सामुदायिक परिसम्पत्तियों का सृजन करना है।

प्राथमिकताएं

सुनिश्चित रोजगार योजना के तहत निम्नलिखित स्वरूप के कार्यों को प्राथमिकता दिये जाने का प्रावधान है :

(क) जल संभर वाटर शैड विकास के तहत जल संरक्षण, भूमि सुरक्षा, हरियाली संरक्षण, वन-रोपण, कृषि-वानिकी, वन-चरागाह आदि के लिए तैयार की गई अभिक्रिया योजनाओं के आधार पर चुने गए कार्य।

(ख) लघु सिंचाई तालाबों, परिस्रवण टैंकों, ग्रामीण तालाबों तथा नहरों से संबंधित कार्य।

(ग) गांवों को सड़कों से जोड़ने हेतु जिलों के लिए तैयार किए गए मास्टर प्लान के आधार पर चुने गये सम्पर्क मार्ग के कार्य।

(घ) जवाहर रोजगार योजना के तहत कार्यान्वित किये जा रहे आपरेशन ब्लैक बोर्ड कार्यक्रम के पैटर्न पर प्राथमिक स्कूलों में भवन।

(ड.) आंगनवाड़ियों के लिए भवन।

मुख्य विशेषतायें

इस योजना की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं:

(क) इस योजना के अंतर्गत रोजगार के इच्छुक सभी मजदूरों को अपनी-अपनी पंचायत में अपना पंजीकरण करवाना होगा। काम के लिए पंजीकृत सभी लोगों को एक परिवार पत्र दिया जायेगा जिसमें परिवार के सदस्यों का और उन्हें उस वर्ष उन्हें दिये गये रोजगार का विवरण दर्ज होगा।

(ख) यह योजना पंचायतों द्वारा जिला, प्रखण्ड और ग्राम स्तर पर कलेक्टर/उपायुक्त की देख-रेख, दिशा-निर्देशन और नियंत्रण में चलायी जाएगी।

(ग) इस योजना के अंतर्गत आने वाले प्रत्येक विकास प्रखण्ड में कलेक्टर/उपायुक्त के निर्देशन में परियोजनाओं की एक सूची तैयार की जाएगी। सुनिश्चित रोजगार उपलब्ध कराने की इन परियोजनाओं में भूमि एवं जल संरक्षण कार्य, बागवानी, वनरोपण, रेशम उद्योग जैसी सामाजिक

आर्थिक सामुदायिक परिसम्पत्तियों का निर्माण सम्मिलित होगा। सामान्यतः इन परियोजनाओं का आकार ऐसा होगा कि उनसे कम से कम बीस व्यक्तियों को तीस दिन का रोजगार मिल सके। इन परियोजनाओं का विकास प्रखण्डों में सुनिश्चित रोजगार योजना तथा अन्य विशेष रोजगार कार्यक्रमों के अन्तर्गत चल रही परियोजनाओं के साथ तारतम्य स्थापित किया जायेगा।

(घ) प्रखण्ड की पंचायत समितियां कलेक्टर/उपायुक्त के निर्देश में प्रखण्ड विकास अधिकारी और उनके तकनीकी कर्मचारियों के माध्यम से इस योजना का कार्यान्यवन करेगी। कलेक्टर और प्रखण्ड विकास अधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि जब भी कम से कम बीस व्यक्ति उनके पास काम मांगने आएं तो प्रखंड में कहीं भी उनको रोजगार उपलब्ध कराया जाए। इस उद्देश्य के लिए वे अनुमोदित परियोजनाओं की सूची में किसी भी परियोजना को शुरू करने का आदेश दे सकते हैं।

(ड.) इस योजना के अंतर्गत दैनिक मजदूरी अकुशल श्रमिकों को देय मजदूरी के बराबर होगी। यह मजदूरी पुरुष और महिला श्रमिकों के लिए समान होगी। मजदूरी का कुछ भाग खाद्यान्न के रूप में दिया जा सकता है। खाद्यान्न के रूप में दी जाने वाली मजदूरी के भाग का भुगतान खुले बाजार में खाद्यान्न की कीमत पर निर्भर होगा। यह भी ध्यान रखा जाएगा कि श्रमिकों को दिये जा रहे खाद्यान्न की कीमतें सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अर्न्तगत निर्धारित खाद्यान्नों की कीमतों से अधिक नहीं होंगी।

(च) इस योजना पर आने वाला व्यय 80 और 20 के अनुपात में केन्द्र और राज्य सरकारें वहन करेंगी। वर्ष 1993-94 में इस योजना के लिए केन्द्रीय हिस्से के रूप में 1000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

निगरानी और मूल्यांकन

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की राज्य स्तरीय समन्वय समिति सुनिश्चित रोजगार योजना के समग्र पर्यवेक्षण, मार्गदर्शन तथा निगरानी हेतु उत्तरदायी है। राज्यों से भी अपेक्षा की गयी है कि वे उस प्रत्येक जिले में जहां यह योजना चलायी जा रही है, एक जिला समिति का गठन करें और प्रत्येक खण्ड में एक ब्लाक सुनिश्चित रोजगार समिति स्थापित करें। इन समितियों के सदस्यों में एजेंसियों के जिला स्तरीय अधिकारियों, चुने गए प्रतिनिधियों तथा गैर सरकारी संगठनों को शामिल किया जा सकता है। इसी प्रकार, ब्लाक स्तर पर समिति की सदस्यता में कार्यान्वयन एजेंसियों के खण्ड स्तरीय अधिकारियों, चुने गये प्रतिनिधियों, गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों आदि को शामिल किया जा सकता है। ये समितियां अपने क्षेत्राधिकार में समय-समय पर जारी की गयी इस योजना की मार्गदर्शिकाओं के अनुसार योजना के कार्यान्वयन की देख-रेख करेंगी और योजना के अधिक प्रभावी कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकारों को सुझाव देंगी।

लेखकों से

"कुरुक्षेत्र" के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा आदि रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजिये। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न नहीं होगा उन्हें स्वीकार करना संभव नहीं होगा। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', 467, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजें।

सफलता की कहानी

चिकित्सा से पर्यावरण की ओर

✍ जसवंत सिंह मान

मैं अकेला ही चला था जानबे मंजिल।
लोग मिलते गए और कारवां बनता गया।।

जी हां—डा. महावीर प्रसाद बुढानिया अकेले ही थे जब उन्होंने जिला चुरू की तहसील डूंगरपुर के गांव मोमासर को हरा-भरा करने की ठानी। डा. बुढानिया ने पहला पेड़ 1990 में राजकीय प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र मोमासर में जब लगाया तब उन्हें आशा नहीं थी कि पिछड़े इलाके के इस गांव में कोई उसका सहयोगी भी होगा। फिर भी उन्होंने अपने स्टाफ को प्रेरित कर अस्पताल परिसर में 500 पेड़ लगा ही दिए जिनमें से आज 300 के लगभग मौजूद हैं। डा. बुढानिया अपने व्यस्त चिकित्सीय कार्य से जनता में विश्वास अर्जित कर उन्हें गांव को हरा-भरा करने के लिए प्रेरित करते रहते लेकिन लोगों को बालुई धरती में, जहां गर्मी, सर्दी, आंधी का प्रकोप सदैव बना रहता है—वृक्षारोपण की प्रेरणा हास्यप्रद लगती। मगर अपनी धुन में मग्न डा. बुढानिया गांव को हरा-भरा करने की अपनी योजना को साकार होते देखना चाहते थे। गांव मोमासर चारों ओर से बालुई रेत के टीले से घिरा हुआ है। कहीं-कहीं ही आपको खेजड़ी अथवा रोहिड़ा नजर आएगा। यही कारण है मोमासर और अकाल दोनों का चोली दामन का साथ रहा है। इन्द्र देवता की कृपा यहां कभी-कभार ही होती है। इन्द्र देवता को खुश कर वर्षा को बुलवाने हेतु यज्ञ करवाने की योजना गांव वालों ने बनाई तो इस अवसर पर डा. बुढानिया की प्रेरणा से वर्षा बुलाने के स्थायी हल स्वरूप मोमासर के चारों ओर घरों में, खेतों में पेड़ लगाने का सामूहिक संकल्प लिया गया। अस्पताल परिसर में लगे पेड़ भी गांव वालों के लिए अब दर्शनीय बन गए थे। योजना के प्रथम चरण में बाबा रामदेव जी के मन्दिर के पास 39 बीघा भूमि में 21,000 पेड़ लगाए गए जो धीरे-धीरे अब 200 बीघा भूमि तक फैलकर एक लाख पेड़ों तक पहुंच चुके हैं। इन पेड़ों में नीम, पीपल, सरस, जाल, खेजड़ी, रोहिड़ा, बेरी जैसे राजस्थानी प्रकृति के पेड़ों के अलावा गुलमोहर, शीशम, कनेर, अशोक पल्लवित हो रहे हैं।

दो वर्ष से भी कम अवधि में मोमासर पर्यावरण परियोजना की सफलता पर अब गांव के लोगों को गर्व है। वैज्ञानिक तरीके और जन सहयोग से चलाई जा रही इस परियोजना की सुरक्षा भी गांव वाले स्वयं ही कर रहे हैं। रात दिन के कठोर परिश्रम के चलते इस परियोजना में अनेक सरकारी विभाग भी सहयोग करने के लिए आगे आए। वन विभाग के पेड़ों की दर की अपेक्षा यहां लगाए गए 95 प्रतिशत पेड़ जिन्दा हैं। जन सहयोग लेने के लिए डा. बुढानिया ने अपने स्वास्थ्य की भी परवाह नहीं की। जैसे-जैसे पेड़ों की संख्या तथा उनकी लम्बाई बढ़ रही है वैसे-वैसे ही डा. बुढानिया का वजन कम होता जा रहा है मगर वे बढ़ते पौधों को देख प्रफुल्लित हैं।

गांव मोमासर में पर्यावरण चेतना जगाने और जन सेवा के उल्लेखनीय कार्य के लिए इस चिकित्सक को मारवाड़ी युवा मंच कलकत्ता ने पर्यावरण तथा जनसेवा के उल्लेखनीय कार्यों के लिए 'ईश्वर दास जालान स्मृति' पुरस्कार प्रदान किया। पुरस्कार में 11 हजार रुपये की राशि, प्रशस्ति पत्र तथा स्मृति चिन्ह शामिल हैं।

डा. बुढानिया ने उक्त राशि पर्यावरण संरक्षण हेतु लौटा दी। 15 अगस्त, 1993 को जिला कलक्टर चुरू ने भी प्रशस्ति पत्र देकर उन्हें सम्मानित किया। पहला कदम हमेशा अकेला होता है लेकिन दूसरों के लिए पथ बन जाता है। ठीक यही बात डा. बुढानिया की है। आज बाबा रामदेव पर्यावरण परियोजना न केवल मोमासर में बल्कि पूरे राजस्थान में चर्चा का विषय है।

क्षेत्रीय प्रचार सहायक,
सीकर (राजस्थान)

महिला राजगीर योजना : एक अभिनव प्रयोग

अशोक यादव*

सदियों से अपने साथी पुरुष कारीगर को लगातार मसाला (सिमेन्ट रेत व पानी का मिश्रण) पहुंचाते रहना, भवन निर्माण में हर कदम पर उनसे समन्वय एवं तालमेल के साथ उनकी सहयोगी के रूप में काम करना हमारी ग्रामीण महिलाओं की नियति रही है। किसी भवन की नीवें खोदने से लेकर प्लास्टर करने तक लगातार एक सहचरी के रूप में ग्रामीण महिलाएं अपने पुरुष साथी कारीगरों के साथ उनके निर्देश में काम करती आ रही हैं। अपने कारीगर पति के साथ काम करती आ रही एक नवयौवना मजदूरनी या कुली चाहे प्रौढ़ावस्था तक यही काम करती रहे और अपने बच्चों को भी यदि मसाले की तगारी गिनवाये तब भी वेतन उसी अनुपात में मिलेगा जो अपने पति के साथ 20 वर्ष पूर्व मिलता था। वेतन यानि कि दैनिक मजदूरी यानि आज के हिसाब से पुरुष कारीगर को 80 रुपये तो महिला मजदूरनी को 15 रुपये।

तेजी के साथ चल रहे गरीबी व बेरोजगारी भरे जीवन चक्र में यह सब साधारण-सा लगता है। यूहीं सब चलता रहता है, फिर सनातन काल से चली आ रही इस व्यवस्था पर कोई क्यों अंगुली उठाये या प्रश्न चिन्ह लगाये?

योजना की शुरुआत

बांसवाड़ा जिले की तलवाड़ा पंचायत समिति के जनजातीय बाहुल्य गांव कुपड़ा में अचानक जब ग्रामीण महिलाओं को यह बताया गया कि "उन्हें मजदूरी के स्थान पर अब कारीगर का प्रशिक्षण दिलाया जाएगा और प्रशिक्षण के बाद वह भी अपने पुरुष साथी कारीगरों की तरह मजदूरनी के स्थान पर कारीगर का काम करने में सक्षम होंगी", यह सुनकर उनके चेहरे पर एक आश्चर्य की लहर दौड़ पड़ी। श्रीमती मणी ने प्रशिक्षण के बारे में कुछ ध्यान से सुना एवं जिज्ञासा वश सामने बैठे कारीगर पति लक्ष्मण की ओर विस्मित भाव से देखा तो पाया उसका पति कहीं गहरे विचार में खोया था। महिला राजगीर योजना एक ऐसी ही योजना है, जो सदियों से महिलाओं को समाज में उनकी परम्परागत भूमिका में परिवर्तन कर उन्हें आर्थिक एवं सामाजिक रूप से स्वावलम्बी और बेहतर जीवन की ओर बढ़ाने में प्रयासरत है। राजस्थान में ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, यूनीसेफ तथा ग्रामीण विकास संस्थान, जयपुर के मिले-जुले प्रयास से महिला राजगीर योजना राज्य के तीन जिलों जयपुर की झोवाड़ा, भीलवाड़ा की सुवाना तथा बासवाड़ा की तलवाड़ा पंचायत समिति में क्रियान्वित हो रही है।

योजना का उद्देश्य

योजना का मुख्य उद्देश्य ऐसी महिलाओं को, जो कि परम्परागत रूप से भवन निर्माण में मजदूरनी या कुली के रूप में कार्य कर रही हैं, प्रशिक्षण देकर उनके पुरुष साथी कारीगरों की तरह सक्षम बनाना है ताकि वह अपनी योग्यता के आधार पर पुरुष के समान पारिश्रमिक प्राप्त कर सकें। अधिकांश महिला विकास कार्यक्रमों की तरह इस योजना में भी गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली ग्रामीण महिलाओं को चयनित किया गया है। बीस से 45 वर्ष की आयु वर्ग की 16 महिलाओं को इस योजना के अन्तर्गत चयनित किया गया।

चार माह के इस प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रथम चरण में 20 दिन तक इन निरक्षर महिलाओं को अक्षर ज्ञान एवं साधारण लिखना, पढ़ना सिखाया गया। महिलाओं को उनकी बोली में ही समझाने के लिए एक स्थानीय महिला को सहयोगी के रूप में रखा गया।

योजना को पूर्ण संरक्षण

जिला प्रशासन ने भी इस अभिनव प्रयोग को पूर्ण संरक्षण प्रदान किया। इसके उद्घाटन अवसर पर बांसवाड़ा के जिला कलक्टर ने उपस्थित होकर उनका उत्साह बढ़ाया। दूसरी ओर संभागी महिलाओं के आत्म-विश्वास में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। आरम्भ में सहमी सी नजर आती हुई महिलाएं अब एक मेधावी विद्यार्थी की तरह प्रश्नों के उत्तर देती दिखाई देती हैं। कुछ ही दिनों के प्रशिक्षण में इन महिलाओं को अनुशासन का बोध होने लगा एवं सभी ने मिलकर अपने 30 रुपये दैनिक भत्ते के पैसों में से एक ही रंग की साड़ी व ब्लाउज खरीद लिये।

*मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जिला परिषद, बांसवाड़ा

महिलाओं ने अपना नाम लिखना, सौ तक गिनती लिखना व बोलना तथा साधारण अक्षरज्ञान सीख लिया। अपनी स्लेट पर लिखना व उसे पढ़कर सुनाना जहां महिलाओं में गर्व की भावना भर देता था वहीं प्रशिक्षणकर्ताओं को भी अपने प्रयास पर संतोष होने लगा। अपनी लिख-लिख कर भरी हुई कापी को ये ग्रामीण महिलाएं एक महत्वपूर्ण दस्तावेज से कम नहीं समझती हैं।

निःशुल्क टूल किट

आरंम्भिक शब्द एवं कक्षा में अध्ययन के बाद इन महिलाओं को यूनीसेफ द्वारा प्रदत्त एक हजार रुपये का निःशुल्क टूल किट दिया। इसमें राजगीर योजना के लिये प्रयुक्त लगभग सभी औजार यथा गज फीता, लेवल, कन्नी, हथोड़ा, सूत, गुनिया, सावल इत्यादि थे।

यद्यपि ये महिलाएं वर्षों से इन औजारों को देखती आ रही है, इन्हें उठाकर इधर से उधर रखती रही हैं, किन्तु इनका अधिकारपूर्ण उपयोग करना इनकी कल्पना से दूर ही रहा। आज यह महिलाएं बड़े अधिकारपूर्ण ढंग से इन्हें सम्भाल रही हैं, तथा इनका यथायोग्य उपयोग कर रही हैं।

महिला कारीगर चम्पा से जब लेवल का उपयोग करने को कहा तो उसने तत्काल उसे फर्श पर रखकर बताया कि यह बून्द जब बीच में होती है तो इसका मतलब है कि फर्श समतल है। चार माह के प्रशिक्षण के दौरान इन महिलाओं को निर्धूम चूल्हे बनाना, ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम के अन्तर्गत बनाये जा रहे शौचालय, स्नानागार, गांव के चबूतरे, नाली आदि का निर्माण करा कर ट्रेनिंग दी गयी। गांव देवलिया में आयोजित जनजागरण कार्यक्रम में जिला कलक्टर डा. बी. शेखर ने इन महिलाओं द्वारा बनाये गये शौचालय का अवलोकन किया एवं बातचीत कर उनके कार्य की प्रशंसा कर उत्साह बढ़ाया। पूरे प्रशिक्षण काल के दौरान जिला परिषद के मुख्य कार्यकारी अधिकारी, सहायक अभियन्ता, परियोजना अधिकारी (ग्रामीण स्वच्छता), पंचायत समिति बांसवाड़ा के विकास अधिकारी, कनिष्ठ अभियन्ता, राजकीय ग्रामीण प्रबन्धन संस्थान तथा ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग के ट्रेनिंग कोर्डीनेटर लगातार जुड़े रहे एवं समय-समय पर प्रशिक्षणार्थी महिलाओं से सम्पर्क कर उनसे प्रगति की जानकारी प्राप्त करते रहे।

महिलाओं से मिलने एवं उनके प्रशिक्षण की स्थिति देखने जयपुर स्थित यूनीसेफ की परियोजना अधिकारी श्रीमती संगीता जेकब भी आयीं। उन्होंने कूपड़ा में महिलाओं द्वारा निर्मित शौचालय का निर्माण देखा एवं कार्य कुशलता की सराहना की। प्रशिक्षण के समापन समारोह में जिला परिषद के मुख्य कार्यकारी अधिकारी ने प्रशिक्षण प्राप्त कर रही महिलाओं को रोजगार देने के लिए आश्वस्त किया। सरकारी रोजगार कार्यक्रमों में प्रशिक्षण तो दे दिया जाता है, किन्तु प्रशिक्षण के बाद महिलाओं को रोजगार प्रदान करने की कोई पहल नहीं की जाती है। इसका पूर्व में ही विचार कर निर्णय ले लिया गया था कि इन महिलाओं को पंचायत द्वारा चलाये जा रहे निर्माण कार्यों में लगाया जाएगा। इसे सुनिश्चित करने के लिये प्रशिक्षण समाप्ति के दिन महिलाओं को मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा स्वयं का पता लिखे हुए खाली पोस्टकार्ड दिये गये एवं निर्देशित किया गया कि यदि उन्हें रोजगार सम्बन्धित कोई कठिनाई हो तो सीधा यह पोस्टकार्ड उन्हें लिख दें।

प्रतिकूल मान्यताओं को चुनौती

प्रशिक्षण समाप्ति के दो माह के बाद ये महिलाएं पंचायत द्वारा चलाये जा रहे निर्माण कार्य में कारीगर के रूप में कार्य कर रही हैं। उन्हें यह अहसास भी हो गया है कि कारीगर के रूप में उन्हें न केवल पूर्व में कार्यरत कारीगरों की कार्य कुशलता से टक्कर लेनी है बल्कि, सदियों से स्थापित प्रतिकूल सामाजिक मान्यताओं का भी सामना करना है।

आशा है कि महिला राजगीर के रूप में प्रशिक्षित ये महिलाएं अपने पुरुष कारीगर साथियों की तरह कुशलता से कार्य कर, न केवल प्रशिक्षण कार्यक्रम को सार्थक बनाएंगी बल्कि बदलते हुए सामाजिक परिवेश को एक नयी दिशा देंगी। परिवर्तन का यह पक्ष ग्रामीण महिलाओं के जीवन क्रम में एक नयी ऊर्जा, नये आत्मविश्वास और सहभागिता का सूचक होगा, ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

मुख्य कार्यकारी अधिकारी,
जिला परिषद, बांसवाड़ा

महिला राजगीर योजना के अंतर्गत सस्ता शौचालय निर्माण करती हुई महिला राजगीर

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/95
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

R.N./708/5
P & T Regd. No. D/(DL) 12057/9
Licenced under U (DN)-5
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-5

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित और आकाशदीप प्रिन्टर्स, नई दिल्ली - 110002 द्वारा मुद्रित